RNI No.: MPHIN/2018/77137

ISSN 2582-483X

पाठशाला
भीतर और बाहर

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष–5 अंक–17 सितम्बर 2023
तिमाही, भोपाल



पाठशाला
भीतर और बाहर

सितम्बर, 2023 (वर्ष 5, अंक 17)

प्रकाशक

Azim Premji University

- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
  सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
  Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
  पाठशाला भीतर और बाहर
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
  सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
  भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
  pathshala@apu.edu.in
  gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
  मो. 8226005057

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

पत्रिका में छपे लेखों में व्यक्त विचार और मत लेखकों के अपने हैं।
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सम्पादकीय

शिक्षा को समाज में बदलाव का एक महत्त्वपूर्ण ज़रिया माना जाता है। समाज में आने वाला यह बदलाव कैसा होगा, इस बदलाव की प्रकृति क्या होगी, यह बहुत कुछ दी जा रही शिक्षा की प्रकृति पर निर्भर करेगा। शिक्षा की प्रकृति और समाज में बदलाव के रिश्ते पर विमर्श सदियों से चला आ रहा है। दुनियाभर के कई विद्वानों ने इसपर सोचा है और आज भी यह विमर्श जारी है। इसका जारी रहना ज़रूरी भी है। इस विमर्श में एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण यह है कि शिक्षा, इंसान को चिन्तनशील, संवेदनशील और तार्किक बनाने में मददगार होनी चाहिए। अब ऐसी शिक्षा कैसे हो; उसके तहत कक्षा में क्या हो; इसके लिए शिक्षक कैसे हों? ऐसे सवालों पर संवाद भी शिक्षा की प्रकृति का ही हिस्सा है। शिक्षा को बेहतर बनाने में यह विमर्श बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। *पाठशाला* के ज़रिए हम इस विमर्श को जारी रखने और पोषित करने की कोशिश करते हैं।

पाठशाला में छपे लेख अलग-अलग सन्दर्भों में पनपे और शिक्षा से जुड़े विभिन्न मुद्दों को सम्बोधित करते हैं। ये लेख उन मुद्दों को गहराई और सन्तुलित ढंग से समझने में मददगार हैं। साथ ही ये लेख, शिक्षा क्या है; अच्छी शिक्षा कैसे हो; अच्छी शिक्षा के लिए शिक्षक कैसे हों; जैसे सवालों का कुछ हद तक जवाब देने की कोशिश भी करते हैं। हालाँकि कई बार ये सवाल और उनके जवाब प्रत्यक्ष और सीधे नहीं होते।

परिप्रेक्ष्य स्तम्भ में पहला लेख अमित कुलश्रेष्ठ का है, यह लेख गणित शिक्षण से सम्बन्धित दो महत्त्वपूर्ण मसलों को पाठकों के सामने रखता है। पहला, गणित करना और गणना करना एक ही बात नहीं हैं, इन दोनों में बहुत अन्तर है। दूसरा, गणित सीखने में इबारती सवाल और उनको हल करते हुए किए गए चिन्तन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। असल में, कक्षाओं में गणित सिखाते वक़्त ज़ोर गणना करना सिखाने पर होता है। बच्चे जल्द-से-जल्द गणना कर पाएँ, इसलिए उन्हें महज़ संक्रियाएँ सिखा दी जाती हैं, लेकिन संक्रियाएँ सीखना, गणित सीखना नहीं है। इस जल्दबाज़ी में बच्चे गणितीय भाषा पढ़ना-लिखना नहीं सीख पाते हैं। लेखक कहते हैं कि अच्छे इबारती सवाल होना, उनको पढ़कर समझ पाना और तब हल करने के लिए सोचना, गणितीयकरण की प्रक्रिया में शामिल होने का बुनियादी तरीक़ा होना चाहिए।

बच्चों के लिए अच्छी किताबें कौन-सी हो सकती हैं, जो उनके सीखने की प्रक्रिया में मदद करें? अनिल सिंह का लेख कुछ उत्कृष्ट बाल-पुस्तकों पर चर्चा के ज़रिए इस सवाल का जवाब देता है। यह चर्चा बाल साहित्य चुनने के लिए शिक्षकों को एक आधार देती है। साथ ही, यह लेख बाल-साहित्य प्रकाशित करने वाले प्रकाशकों व कुछ अच्छी किताबों की सूची भी उपलब्ध कराता है।

गणित करने से क्या आशय है, इसमें किस तरह का मज़ा आ सकता है, व कैसे इसमें आप डूब सकते हैं, जैसी बातों का एक विस्तृत विवरण विवेक कुमार मेहता के लेख में मिलता है। गणित के एक सवाल को हल करने के लिए लेखक कैसे सोच रहे थे; कैसे वह क़दम-दर-क़दम रास्ता सोचते हुए आगे बढ़े? इसकी कुछ झलक हम इस लेख में देख सकते हैं। सवाल हल करने के लिए उनका पहला क़दम क्या था; दिए गए सवाल में उन्हें क्या पैटर्न दिखा; इस पैटर्न से उन्होंने आगे वाली संख्याओं के बारे में क्या अनुमान लगाया; यह अनुमान ग़लत निकला तब उन्होंने फिर से किस पैटर्न के बारे में सोचा, और क्यों? ऐसी कई बातें लेख पढ़ते हुए और पढ़ने के साथ-साथ करते हुए समझ आती हैं। शायद आपको भी लेख का कुछ हिस्सा पढ़ने के बाद पेंसिल और पेपर पर कुछ जद्दोजहद करने का मन करे।

विमर्श स्तम्भ के तहत शामिल लेख 'कविता की सप्रसंग व्याख्या' के लेखक मनोज कुमार हैं। लेख कविता पढ़ाने के तरीक़े पर चर्चा करता है। लेखक बताते हैं कि आज भी कविता पढ़ाने का ढंग वही है, जो आज से 4-5 दशक पहले था। इसमें शिक्षार्थी से अपेक्षा होती थी कि वह लेखक परिचय के साथ-साथ कविता का भावार्थ लिख दे। लेखक कहते हैं कि कविता का अर्थ, कविता पढ़ने वाला ख़ुद अपने सन्दर्भों में गढ़ता है। शिक्षार्थी को कविता पढ़ाने का उद्देश्य कविता में ही निहित है, वह पढ़े और ख़ुद ही अर्थ गढ़े। विद्यार्थी से इस अर्थ के गढ़ने में मदद करने वाली बातचीत होनी चाहिए, लेकिन इस बातचीत का अर्थ लेखक के जीवन के क़िस्से और बना-बनाया अर्थ दे देना नहीं है।

शिक्षणशास्त्र के तहत इस बार 3 लेख हैं। मीनू पालीवाल का लेख पढ़ना सीखने में मौखिक भाषा की भूमिका के बारे में है। इस मुद्दे पर समझ बनाने के लिए उन्होंने शिक्षकों के साथ मिलकर कुछ टास्क किए। इन टास्क को कर पाने के बाद अधिकांश शिक्षक यह महसूस कर पाए कि मौखिक भाषा इंसान की सुनने व अनुमान लगाने की क्षमता और भाषा की संरचना की समझ को प्रभावित करती है। इंसान जिन शब्दों को ज़्यादा सुनते-समझते हैं, जिन संरचनाओं को ज़्यादा समझते हैं, पढ़ते वक़्त उनके दिमाग़ में वे ही ज़्यादा आते हैं। इसलिए लेखिका का मानना है कि यदि टेक्स्ट ऐसा हो जिसमें जाने-पहचाने शब्द व संरचनाएँ हों, तो उस टेक्स्ट को पढ़कर समझना कुछ आसान हो जाता है।

प्रिया जायसवाल का लेख सामाजिक विज्ञान के विषयों को समाज से जोड़ने के बारे में है। इसके लिए शिक्षकों के साथ मिलकर एक पुरानी इमारत और उसके इर्द गिर्द के समाज के इतिहास को पता करने का टास्क किया गया। प्रश्न बनाए गए, व्यक्तियों का चयन किया गया और प्रश्नावली से प्राप्त जानकारी की वैधता के लिए सन्दर्भ सामग्री का अध्ययन किया गया। लेख बताता है कि शाला में सीखने-सिखाने को समाज से जोड़ने के लिए इस तरह के तरीक़े काम में लिए जा सकते हैं। इतिहास शिक्षण करते समय बच्चों को भी कुछ ऐसे प्रोजेक्ट दिए जा सकते हैं, और बच्चों से इतिहास जानने के तरीक़ों, उनकी वैधता, आदि पर भी बातचीत की जा सकती है।

इसी स्तम्भ का तीसरा लेख, शुरुआती कक्षाओं में बच्चों को लिखना सिखाने के सन्दर्भ में है। इसकी लेखिका सुनीता ने कक्षा 1 व 2 के बच्चों के साथ पूरे एक साल तक लिखना सिखाने का काम किया। वे कहती हैं कि लिखना सिखाने में, अर्थ को समझने व सन्दर्भ के लिए चित्रों का तरह-तरह से और भरपूर उपयोग किया गया। उन्होंने लिखने की शुरुआत ही चित्र बनाने से की। पहले शिक्षिका ने ख़ुद चित्र बनाए और बच्चों ने उनके नाम बताए। धीरे-धीरे बच्चे ख़ुद-ब-ख़ुद आगे बढ़ते गए और पूरे-पूरे वाक्य लिखने लगे। वे कहती हैं कि उन्हें यह पता ही नहीं चला कि ऐसे में बच्चे कब मात्राएँ और अक्षर सीख गए।

कक्षा अनुभव के तहत भी इस बार तीन लेख हैं। हंसराज का लेख भी शुरुआती स्तर पर बच्चों को लिखना सिखाने पर केन्द्रित है। वे कहते हैं कि उन्होंने इसकी शुरुआत वर्णमाला सिखाने से की। लेकिन जब कई दिनों बाद भी बच्चों के लेखन में उन्हें कोई प्रगति नहीं दिखी, तब उन्होंने वर्णमाला छोड़कर चित्रों, कविताओं और अन्य तरह की गतिविधियों का सहारा लिया। इन गतिविधियों में बच्चों के परिचित संसार की चीज़ों का इस्तेमाल किया गया, जैसे– उनके ख़ुद के या दोस्तों के नाम, आदि। इन गतिविधियों से बच्चे लिखना सीखने की ओर बढ़े।

अगले लेख में द्रोण इस बारे में चर्चा करते हैं कि बच्चों को दिए जाने वाले टास्क कैसे हों। वे कहते हैं कि टास्क बच्चों के स्तर के तो हों ही, लेकिन खुले भी हों। उनमें ऐसी सम्भावनाएँ भी

होनी चाहिए कि बच्चे, एक दूसरे की मदद से, अपने से बड़ों की मदद से कुछ कर पाएँ। साथ ही, वे पाठ्यपुस्तकों में दिए गए प्रश्नों जैसे न हों और हर बार एक जैसे टास्क न हों। लेख के अन्त में द्रोण भाषा व गणित के कुछ टास्क का उदाहरण भी देते हैं।

इसी स्तम्भ के अन्तर्गत प्रतिभा का लेख पत्र लेखन पर है। वे पत्र लेखन के ज़रिए भाषा सिखाने के साथ ही सोचना सिखाने, विचार करना सिखाने, समाज से जोड़ने, आदि की कोशिश करती हैं। उन्होंने तय किया कि बच्चे कुछ अच्छे पत्रों के नमूने देखें, अपने पत्र के लिए विषय चुनें और तब पत्र लिखने का काम करें। कक्षा में यह सब उन्होंने कैसे किया, इसका पूरा विवरण उनके लेख में है। साथ ही, बच्चों द्वारा लिखे गए पत्रों के कुछ नमूने भी पढ़ने के लिए इसमें दिए गए हैं।

इस बार **पुस्तक समीक्षा** स्तम्भ में दो पुस्तकों पर चर्चा है। अभिषेक कुमार द्विवेदी ने जॉन होल्ट की पुस्तक *बच्चे असफल कैसे होते हैं* पर अपने विचार लिखे हैं। जॉन होल्ट की कक्षा और उनकी अपनी कक्षा में कई समानताओं को लेखक देख पाए हैं। पाठकों की कक्षाओं के लिए भी समानता के ये बिन्दु मददगार साबित होंगे।

अंजना त्रिवेदी ने इंसान और कुदरत के रिश्तों को दर्शाती किताब *मिट्टी का इत्र* पर चर्चा की है। वे कहती हैं कि कुदरत और इंसान के रिश्तों के बारे में जानने के लिए यह किताब एक अच्छा सन्दर्भ है। वैसे तो यह किताब 9-10 साल के बच्चों के लिए है, लेकिन उनका कहना है कि यह किसी भी पाठक को अच्छी लगेगी।

इस बार **साक्षात्कार** स्तम्भ में शिक्षक धर्मपाल गंगवार से कमलेश चंद्र जोशी की बातचीत शामिल है। वे बार-बार कहते हैं कि अच्छी शिक्षा के लिए शिक्षक की अपने साथी शिक्षकों से, शिक्षा में काम कर रहे अन्य व्यक्तियों से अन्तर्क्रिया ज़रूरी है। वे शिक्षकों के लिए पढ़ना-लिखना और अपने अनुभवों पर मनन करना ज़रूरी मानते हैं। बहुत-से उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि किताबें और उनमें दिए गए विचार स्कूल, कक्षा और बच्चों के सन्दर्भ में कई चीज़ों को समझने और बहुत-से विचारों को पुष्ट करने में भी मदद करते हैं। पढ़ने और सोचने को बहुत ज़रूरी मानते हुए धर्मपाल कहते हैं कि इससे शिक्षक में आत्मविश्वास आता है और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया बेहतर होती जाती है।

इस बार का **संवाद** 'लिखना' विषय पर था। वक्ताओं ने कहा कि बच्चे लिखना तो चाहते हैं, लेकिन उनको अपनी इच्छा से लिखने की आज़ादी किसी भी स्तर पर नहीं होती। शुद्धता पर ज़ोर, उनके लिखे में सिर्फ़ ग़लतियों को देखना, आदि सभी बच्चों के लिखने में बहुत बड़ी बाधाएँ हैं। यही नहीं, लिखने में फ़ॉर्मेट पर ज़ोर इतना ज़्यादा होता है कि बच्चे सिर्फ़ निबन्ध, पत्र, आदि ही फ़ॉर्मेट में नहीं लिखते, बल्कि प्रश्न-उत्तर का भी एक फ़ॉर्मेट-सा बन जाता है। इस बँधे-बँधाए फ़ॉर्मेट में लिखने को, लिखना तो बिलकुल ही नहीं कहा जा सकता। वक्ताओं ने लिखना सीखने में बच्चों को दी गई आज़ादी को बहुत ज़रूरी बिन्दु माना।

अब तक प्रकाशित लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाएँ **पाठक चश्मा** में पढ़ी जा सकती हैं।

यह भी हम बताना चाहेंगे कि *पाठशाला* का अगला अंक 'पुस्तकालय' पर केन्द्रित होगा। इस अंक और इस थीम के लिए हमें आपके लेखों का इन्तज़ार रहेगा। आशा है, शिक्षा पर संवाद को जारी रखने, बढ़ाने के लिए आपके लेख हमें मिलेंगे ही।

सम्पादक मण्डल

इबारती सवालों की भाषा का सवाल

अमित कुलश्रेष्ठ

गणित के कक्षाकक्ष में संक्रियाओं को सिखाने की इतनी जल्दबाज़ी होती है कि हम इसके चलते गणित के मूल और मानव जीवन में उसकी भूमिका को बच्चों के समक्ष ही नहीं रख पाते। बच्चे गणितीय प्रतीकों और उनके उद्देश्यों को समझें, उनके क्या विभिन्न संयोजन हो सकते हैं, और वे संयोजन वैसे ही क्यों हैं, इस बात को समझें, और साथ ही सवालों को पढ़कर समझना भी जानें– इन सभी बातों के लिए कक्षा में जगह ही नहीं बन पाती। असल में, गणितीय संक्रियाएँ तो सवाल से जवाब तक पहुँचने के रास्ते का एक बहुत छोटा हिस्सा हैं। यह लेख एक इबारती सवाल के ज़रिए बच्चों के मन में झाँकने की कोशिश है, और साथ ही शिक्षक को इबारती सवाल बनाते समय ध्यान रखने योग्य बातों का पिटारा भी। प्रयास है कि ये बातें सहजता के साथ बच्चों को दैनिक जीवन में गणित देखने के लिए प्रेरित कर सकें और विषय के प्रति उनका जुड़ाव भी बना सकें। -सं.

भूमिका

गणित का अर्थ गणना मात्र नहीं है। इससे पहले कि हम इसकी विवेचना करें आइए, इस प्रश्न पर ग़ौर करें।

प्रश्न : !@ और @# को मिलाकर क्या बनेगा?

यदि आपको यह प्रश्न अर्थहीन लगता है तो आप एकदम सही हैं। पहले तो शायद आप इन प्रतीकों !, @, # को समझना चाहें और 'मिलाकर' का अर्थ भी जानने को उत्सुक हों। इसके बिना तो सवाल का सिर-पैर ही नहीं है।

गणित महज़ एक सुनियोजित क्रियाविधि से प्रतीकों से निपटने की कला नहीं है। गणित की प्रासंगिकता इस बात में निहित है कि हम पहले प्रतीकों की आवश्यकता व उनके अर्थ को समझें और फिर उन प्रतीकों के पारस्परिक सम्बन्ध को सुस्पष्ट करने के लिए एक ऐसा ताना-बाना बुनें जिसके प्रत्येक संयोजन का कुछ ख़ास मक़सद हो। प्रतीकों की आवश्यकता और उनके संयोजनों के मक़सद को शिक्षार्थी के पूर्वज्ञान और भाषा की समझ से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

ऊपर के प्रश्न को समझने के लिए पहले एक अन्य प्रश्न की ओर चलते हैं :

प्रश्न : 12 + 23 = ?

यह पहले प्रश्न का ही एक दूसरा रूप है।

अब शायद आप "!@ और @# को मिलाकर क्या बनेगा?" इस प्रश्न को समझ पाएँ, क्योंकि अब वह प्रश्न अर्थहीन नहीं रहा। पर ज़रा सोचिए कि वह बच्चा जिसके लिए 12 + 23 = ? नया है, उसके लिए क्या यह सवाल अर्थहीन नहीं है! हम जल्द-से-जल्द आगे बढ़ने के प्रयास में यह भूल जाते हैं कि इन प्रतीकों 1, 2, 3,... और इनके संयोजनों के मक़सद को

समझना गणित समझ पाने व कर पाने के लिए आवश्यक है। हम जल्दबाज़ी कर बच्चों को प्रतीकों व संयोजनों की समझ से वंचित कर देते हैं। हमारा प्रयास यह होता है कि बच्चे प्रतीकों के भण्डार से निपटने के लिए जल्दी ही तैयार हो जाएँ और उनसे जुड़ी संक्रियाएँ कर लें। यह सब इसलिए होता है क्योंकि यह दबाव है कि जल्दी से गणना करना सिखा दिया जाए। पर क्या यह गणित में दक्षता हासिल करना है, या क्या यह उसकी तरफ़ बढ़ने का सही तरीक़ा है?

यह सवाल इसलिए कि हम यह पूछ पाएँ कि क्या गणनात्मक कौशल ही गणितीय कौशल है, या फिर इनमें अन्तर करना और समझना आवश्यक है? गणनात्मक कौशल से आशय है, निश्चित नियमों का पालन करते हुए संक्रियाएँ करना, और इन क्रियाविधियों का पालन करना सीखना। अब सवाल यह है, क्या यही गणित सीखना है या फिर गणितीय कौशल इससे व्यापक हैं, और संक्रियाएँ एक छोटा हिस्सा? इनके अन्तर के एक पहलू को समझने के लिए इबारती सवालों और उन्हें हल करते समय उभरे चिन्तन की अहम भूमिका हो सकती है। मेरे अनुभव के अनुसार गणनात्मक कौशल ही गणितीय कौशल है, इस भ्रान्ति को पोषित करने में क्रियाविधि पर केन्द्रित गणित शिक्षण और उसमें यथोचित इबारती सवालों के सही प्रयोग की कमी है।

इस लेख में हम इबारती सवालों की भाषा और प्रस्तुति की बात करेंगे। साथ ही इबारती सवालों की भाषा की कमज़ोरी से गणित सीखने में आने वाली चुनौतियों को इंगित करेंगे।

गणित महज़ एक सुनियोजित क्रियाविधि से प्रतीकों से निपटने की कला नहीं है। गणित की प्रासंगिकता इस बात में निहित है कि हम पहले तो प्रतीकों की आवश्यकता व उनके अर्थ को समझें और फिर उन प्रतीकों के पारस्परिक सम्बन्ध को सुस्पष्ट करने के लिए एक ऐसा ताना-बाना बुनें जिसके प्रत्येक संयोजन का कुछ ख़ास मक़सद हो।

इसके लिए हमने गणित की एक अभ्यास पुस्तिका से यह इबारती सवाल चुना है।

एक सवाल

एक कमरे की लम्बाई 5 मीटर 10 सेमी, चौड़ाई 6 मीटर 80 सेमी और ऊँचाई 3 मीटर 40 सेमी है। इस कमरे के सटीक मापन के लिए अधिकतम कितना लम्बा मापक टेप चाहिए?

आइए, इस सवाल के बहाने कुछ शिक्षार्थियों के मन में झाँकें।

पहला शिक्षार्थी

अरे! इस अभ्यास पत्रिका में साफ़-साफ़ HCF और LCM लिखा तो हुआ है। अब क्या सोचना! सीधे-सीधे इन तीन आँकड़ों को सेमी में बदलकर उनका HCF या LCM ले लेना है (उनमें से एक तो सही होगा ही!)। अब HCF में H का मतलब Highest और LCM में L का मतलब Least है। अरे! इधर लिखा तो है सवाल में अधिकतम, यानी Highest, बस हो गया काम! सही उत्तर के लिए HCF ही निकालना है।

दूसरा शिक्षार्थी

अधिकतम टेप का क्या! मैं कितना भी लम्बा ले लूँ। एक किलोमीटर का टेप हो, पर उसपर सेमी वाले सही-सही निशान बने हों तो नापने में क्या रखा है! और जब पहले से ही पता है कि कमरा कितना लम्बा, चौड़ा, ऊँचा है तो फिर से नापना ही क्यों?

तीसरा शिक्षार्थी

इन तीनों मापों में सबसे बड़ा है 6 मीटर 80 सेमी। मैं अगर इतनी लम्बाई का टेप ले लूँ



चित्र : शिवेंद्र पांडिया

तो फिर उसी से चौड़ाई, लम्बाई, ऊँचाई नाप सकूँगा। छोटा टेप होने से दीवार पर निशान बनाना पड़ता है या फिर उँगली लगाकर रखनी पड़ती है जिससे सटीक तरह से नापने में दिक़्क़त आती है। शायद इसी बात को बताने के लिए प्रश्न में सटीक शब्द का इस्तेमाल किया है।

अब हम निम्नलिखित मानदण्डों से इसकी विवेचना करते हैं :

1. कौन-सा शिक्षार्थी सवाल को पूरा पढ़ रहा है?
2. यदि यह सवाल परीक्षा में पूछा जाए तो किस शिक्षार्थी को इस सवाल के लिए अंक मिलेंगे?
3. क्या इस सवाल के जवाबों से बच्चों की समझ पर अध्यापिका कुछ राय बना पाएँगी?
4. क्या इस सवाल से बच्चों को अपनी अवधारणा को विकसित करने या उसे सुधारने का मौक़ा मिलेगा?
5. क्या इस सवाल की भाषा ने बच्चों के मन में गणित के प्रति सकारात्मक छवि विकसित करने का कार्य किया?
6. यदि एक समझदार विद्यार्थी परीक्षा के समय यह सवाल पहली बार देख रहा है तो क्या वह इसको सही प्रकार से हल कर पाएगा?

पहले दो बिन्दुओं का उत्तर सीधा है। पहले शिक्षार्थी ने एक-दो शब्दों को पकड़कर इसका उत्तर दिया है, पर पूरा सवाल नहीं पढ़ा। हालाँकि पूरे अंक उसी को मिलेंगे। दूसरे शिक्षार्थी ने सवाल पढ़ा है पर उसे अंक नहीं मिलेंगे। अध्यापिका को यह भी लग सकता है कि यह बच्चा शरारती है और उसके सवाल का मखौल उड़ा रहा है। तीसरे शिक्षार्थी ने सवाल को पढ़ने की कोशिश की है, पर उसे भी अंक मिलने से रहे!

अब हम आते हैं आख़िरी चार बिन्दुओं पर, और इनपर विचार करते हैं। ये ऐसे बिन्दु हैं जिनकी कसौटी पर हर इबारती सवाल को कसना चाहिए। इनकी उपेक्षा कर बना हुआ सवाल शायद सार्थक सवाल न बन सके।

पहले तीसरा बिन्दु लेते हैं, “क्या इस सवाल के जवाब से बच्चों की समझ पर अध्यापिका कुछ राय बना पाएँगी?” इसपर गहराई से सोचने की ज़रूरत है। किसी भी प्रश्न से कम-से-कम यह अपेक्षा रखी ही जानी चाहिए कि वह शिक्षक को शिक्षार्थी की सोच से अवगत करा पाए। बच्चों ने क्या सीखा, क्या नहीं; सवाल को हल

करने की प्रक्रिया में उनके मन में कैसा चित्र बना और कैसी शंकाएँ उभरीं; और क्या बच्चों ने उन शंकाओं के समाधान के लिए कुछ प्रयास किए? सवाल बनाने वाले का दायित्व है कि वह अपने सवाल को इतना सुस्पष्ट और सशक्त कर दे कि वह शिक्षक के सामने बच्चे के मन में उमड़ने वाले चित्र और शंकाएँ साफ़-साफ़ उकेर सके। शिक्षण प्रक्रिया में सवाल पूछना प्रतिपुष्टि (फ़ीडबैक) का माध्यम है, न कि शिक्षार्थियों के ऊपर कमज़ोर और होशियार की पर्ची चस्पा करने का! यदि प्रश्न की भाषा ही कमज़ोर है तो वह न केवल निरर्थक संवाद को जन्म देती है, बल्कि विद्यार्थियों के मन में डर भी पैदा करती है— विषय के परिप्रेक्ष्य में अपनी समझ के प्रति, और सहपाठियों व परिवार में उनकी अपनी प्रतिष्ठा के प्रति भी! प्रश्न की भाषाई कमज़ोरी उसके बहुअर्थी होने के साथ-साथ उसके शून्यार्थी होने में भी परिलक्षित होती है।

अगला बिन्दु लेते हैं, "क्या इस सवाल से बच्चों को अपनी अवधारणा विकसित करने या उसे सुधारने का मौक़ा मिलेगा?" अवधारणा विकसित करने में सिर्फ़ पाठ्यसामग्री और कक्षाकक्ष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान उन सवालों का है जो बच्चे को चिन्तन करने और किसी प्रसंग या घटना पर आधारित अवधारणा का निर्माण करने में सहायक होते हैं। बच्चे की एकाग्रता और चिन्तन की गहराई सवालों के हल ख़ुद ढूँढ़ने की प्रक्रिया में कहीं अधिक होती है। अवधारणाओं के निर्माण, खण्डन, या पुनर्निर्माण की रचनात्मक प्रक्रिया में अच्छे सवाल बेहतर योगदान दे सकते हैं। सवालों का एकार्थी होना काफ़ी नहीं है। सवाल रुचिकर हों, स्पष्ट और जिज्ञासापरक हों, और साथ ही यदि एक छोटी कहानी या अन्य रूप में बुनी प्रासंगिक परिस्थिति में प्रस्तुत हों तो और भी अच्छा! ऐसे सवाल बच्चे के समक्ष एक रूखी अवधारणात्मक संरचना के कुछ आयामों को प्रत्यक्षता के साथ प्रस्तुत करने का अहम ज़रिया हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि हर प्रश्न से यह अपेक्षा रखी जाए, पर जहाँ तक सम्भव हो, यह प्रयास किया जा सकता है।

बच्चे की एकाग्रता और चिन्तन की गहराई सवालों के हल ख़ुद ढूँढ़ने की प्रक्रिया में कहीं अधिक होती है। अवधारणाओं के निर्माण, खण्डन, या पुनर्निर्माण की रचनात्मक प्रक्रिया में अच्छे सवाल बेहतर योगदान दे सकते हैं।

अब पाँचवें बिन्दु पर बात करते हैं, "क्या इस सवाल की भाषा ने बच्चों के मन में गणित की एक सकारात्मक छवि प्रस्तुत करने का कार्य किया?" ये सही है कि सिर्फ़ एक सवाल को यह दायित्व नहीं सौंपा जा सकता कि वह शिक्षार्थियों में विषय की सकारात्मक छवि का निर्माण करे। लेकिन यदि एक सवाल शिक्षार्थियों को विषय की समझ से दूर ले जाए और जैसे-तैसे उत्तर देने को मजबूर करे, तो यह मन्थन का विषय ज़रूर है। गणित जैसे विषय के ऊपर नीरस, कठिन, उबाऊ जैसे सामाजिक ठप्पे तो पहले से ही लगे हैं, ऐसे में यदि इसके सवालों की भाषा और अप्रासंगिकता इन उपमानों को प्रबल करे तो सीखने की प्रक्रिया में सवालों की भूमिका नकारात्मक ही कही जाएगी। सवाल बनाते समय इस चेतना को समावेशित कर पाना अहम है।

अन्त में छठवाँ बिन्दु, "यदि एक समझदार विद्यार्थी परीक्षा के समय यह सवाल पहली बार देख रहा है, तो क्या वह इसको सही प्रकार से हल कर पाएगा?" इस बात को हम दो स्तरों पर कर सकते हैं। पहली तो यह कि यदि एक कठिन सवाल इतना ही कठिन है कि सोचने के स्वाभाविक तरीक़े उसके हल तक पहुँचने का रास्ता न बूझ सकें, या किसी पूर्व-स्मरण या तिकड़म के सिवाय उस सवाल को न सुलझाया जा सके तो उस सवाल की सार्थकता पर चिन्तन किया जाना चाहिए। सवालों के स्तर में

बच्चों की समझ के अनुरूप उत्तरोत्तर वृद्धि हो, यकायक नहीं। हो सकता है कि कोई सवाल कुछ समय बाद पूछा जाता तो किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करता नज़र आता। समय से पहले पूछा गया सवाल, ऊँची कूद की वह बहुत ऊँची छड़ है जिसे हर पाँव से टकराकर बच्चों के मनोबल पर गिरना ही है। अब दूसरी बात, यह कठिनाई सवाल की नहीं बल्कि भाषा की है। क्या सवाल अपने वाक्य-विन्यास के बल पर इस बात में सक्षम है कि कम-से-कम वह शिक्षार्थी, जो सोचने-समझने में सक्षम है, उस सवाल को उसके उचित आशय के साथ ग्रहण करते हुए उसके बारे में सोचने को प्रेरित हो। यदि ऐसा नहीं हो पा रहा तो उस सवाल से भला क्या हासिल हुआ?

सीखने में भाषा का कोई शॉर्टकट नहीं होता। यही एक समस्या है जिससे कई सारे विषय जूझ रहे हैं, और ख़ुद भाषाएँ भी! इबारती सवालों में अच्छे भाषाई प्रयोग बच्चों के मन में भाषा की छवि के सुधार का काम कर सकते हैं और उनकी भाषा को सटीक, सशक्त और रुचिकर बनाने में योगदान भी दे सकते हैं।

चलिए, अब उसी इबारती सवाल की ओर वापस चला जाए जिससे हमने शुरुआत की है, और देखा जाए कि उसमें सुधार की क्या गुंजाइश है। सुधार करते समय हम सवाल के मूल पात्र, यानी वह कमरा जिसकी नाप-तोल होनी है, और उसके उद्देश्य अर्थात HCF की समझ के साथ छेड़-छाड़ नहीं करेंगे। बस भाषा ऐसी रखेंगे कि ऊपर लिखे हुए बिन्दुओं में से अधिकांश का समाधान हो सके।

सुझाव

कल हमने फ़ीता लेकर अपनी कक्षा के कमरे को नापा था। उसकी लम्बाई 5 मीटर 10 सेमी, चौड़ाई 6 मीटर 80 सेमी और ऊँचाई 3 मीटर 40 सेमी निकली। आज हमारी अध्यापिका ने हमें एक खेल खिलाया। उसके लिए उन्होंने रमेश के खेत से बहुत सारी ईख मँगवाईं और हमारी सहायता से उन्हें एक दूसरे के साथ रख काट-छाँटकर एक बराबर कर लिया। हम लोगों को अब ईख से अपना कमरा नापना था। इसके लिए हमने कुछ ईख को सिरे-से-सिरा सटाकर कमरे की लम्बाई में लगा दिया – एक कोने से दूसरे कोने तक, रेलगाड़ी के डिब्बों की तरह। अरे, ये तो पूरे-पूरे फ़िट हो गए! न एक अँगुल ज़्यादा, न एक सूत कम! कमरे की चौड़ाई के लिए भी हमने ऐसा ही किया। और फिर से बहुत सारी ईख इस चौड़ाई में भी पूरी-पूरी फ़िट हो गईं, एक अँगुल की भी जगह नहीं। मज़ा तब आया जब ऊँचाई नापनी थी। हमें कुछ ईख एक के ऊपर एक रखनी थीं। मुझे अध्यापिका ने चढ़ने के लिए अपनी मेज़ दे दी। अबकी बार भी ईख पूरी-की-पूरी फिट हो गईं। अब बात ख़त्म और सवाल शुरू।

1. हर ईख की लम्बाई भला क्या रही होगी कि वे हमारे कमरे में हर तरफ़ से फिट हो पाईं?

(क) क्या इनकी लम्बाई 1 मीटर रही होगी?

(ख) क्या हो सकता है कि इनकी लम्बाई 55 सेमी रही हो?

(ग) क्या हो सकता है कि इनकी लम्बाई 85 सेमी रही हो?

2. ऐसी लम्बी-से-लम्बी ईख कितनी लम्बी हो सकती है जो इस तरह से हमारे कमरे की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तीनों में पूरी तरह से फिट हो पाए?

3. सोचकर देखो :

(क) आपकी कक्षा में कोई बच्चा ऐसी लम्बी-से-लम्बी ईख से भी लम्बा है क्या?

(ख) ऊँचाई नापने के लिए एक बच्ची को मेज़ पर चढ़ना पड़ा। क्या ऊँचाई नापने के और भी तरीक़े हो सकते हैं?

पाठकों को चाहिए कि वे उचित मानदण्डों के आधार पर सवाल के इस स्वरूप का भी विश्लेषण करें।

अन्त में

यह सवाल कुछ लम्बा है और इसे पढ़ने के लिए समय चाहिए। इसकी आलोचना करते समय यह भी कहा जा सकता है कि सवाल गणित का है या भाषा का! कुछ भी सीखने की प्रक्रिया में भाषा की अवहेलना भ्रान्तियों को जन्म दे सकती है, और विषय के मूल से भटका सकती है। कमज़ोर भाषा के साथ सतही तौर पर एक विषय का अवलोकन तो किया जा सकता है पर उसका चिन्तन नहीं। सीखने में भाषा का कोई शॉर्टकट नहीं होता। यही एक समस्या है जिससे कई सारे विषय जूझ रहे हैं, और ख़ुद भाषाएँ भी! इबारती सवालों में अच्छे भाषाई प्रयोग बच्चों के मन में भाषा की छवि के सुधार का काम कर सकते हैं और उनकी भाषा को सटीक, सशक्त और रुचिकर बनाने में योगदान भी दे सकते हैं।

हम देखते हैं कि स्कूलों में हिन्दी, अँग्रेज़ी और अन्य भाषाओं में बच्चों को अपठित गद्यांश या पाठ बोध (Reading Comprehension) पढ़ने और समझने के लिए प्रेरित किया जाता है। उनके मूल्यांकन के समय भी इन्हें समाहित किया जाता है, पर गणित में ऐसा नहीं है। हमें गणित में भी अच्छे इबारती सवालों के बहाने एक ऐसा ही रास्ता खोजना होगा जो बच्चों में गणितीय और भाषाई कौशल एक साथ विकसित कर सके। साथ ही, बच्चों के मन में विषय की संकल्पना, उसकी छवि और उसके उपविषयों की अवधारणाओं को निखारता हुआ उन्हें विषय से ख़ुद जुड़ पाने का आत्मविश्वास दे सके।

अमित पिछले पन्द्रह वर्षों से भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसन्धान संस्थान, मोहाली के गणित विभाग में कार्यरत हैं। यूँ तो वे सीखने-सिखाने के क्रम में स्नातक और परास्नातक स्तर के विद्यार्थियों व शोधार्थियों के साथ गणित की दैनिक चर्चाएँ करते हैं, लेकिन जब भी उन्हें स्कूली बच्चों और शिक्षकों के साथ विमर्श एवं उनके मुद्दों पर चिन्तन करने का मौक़ा मिलता है, उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं। गणित और भाषा से जुड़े सवालों में उनकी विशेष रुचि है।

सम्पर्क : amitk@iisermohali.ac.in

बाल साहित्य : नए संसार की खिड़की

अनिल सिंह

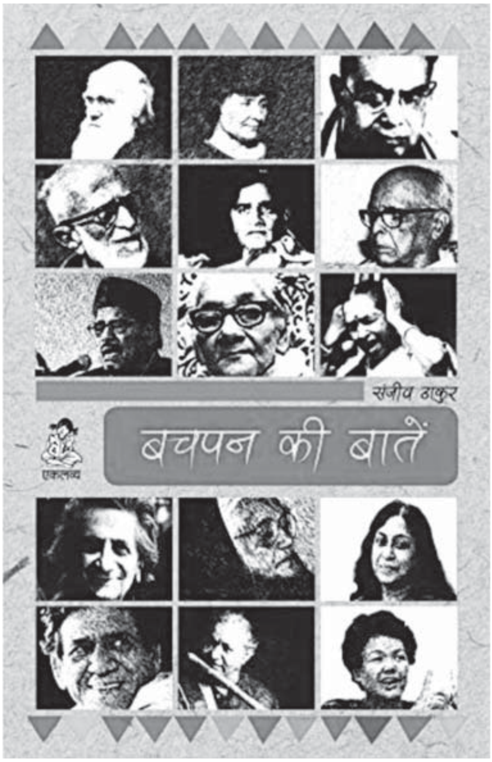
यह लेख बच्चों के लिए साहित्य की महत्ता को दर्शाता है व बच्चों की कुछ किताबों के बारे में चर्चा करता है। लेख के अन्त में कुछ किताबों की सूची भी दी गई है जो स्कूल या समुदाय के पुस्तकालयों व ऐसे अन्य मंचों के लिए उपयोगी हो सकती है। -सं.

साहित्य की दुनिया सम्भावनाओं की दुनिया है। यह हमारी आकांक्षाओं, कल्पनाओं और मानवीय उत्कर्ष की दुनिया है। बचपन इस दुनिया को गढ़ने की सबसे मुफ़ीद उम्र है। वह कितना मनोरम दृश्य होगा जब हर बच्चे के हाथ में एक सुन्दर किताब होगी या कोई बड़ा उसे कहानी पढ़कर सुना रहा होगा!

शिक्षकों और अभिभावकों की यह समस्या रहती आई है कि उत्कृष्ट बाल साहित्य की पहचान कैसे हो और वह कहाँ मिले। बाज़ार की जटिलता एक अन्य समस्या है, लेकिन अच्छे बाल साहित्य का कोई पता-ठिकाना तो मिले, उसकी कहीं चर्चा हो, तभी लोगों को उसकी कोई भनक भी होगी और तब तलब भी होगी। पिछले कुछेक वर्षों में इस दिशा में संजीदा काम हुआ है। इसमें प्रकाशकों, लेखकों, चित्रकारों, शिक्षाविदों और बाल साहित्य प्रवर्तकों का साझा हाथ है। बाल साहित्य को साहित्य की एक ज़रूरी श्रेणी मानकर उसपर ध्यान केन्द्रित करते हुए और विविध प्रयासों के ज़रिए उत्कृष्ट बाल साहित्य रचने व उसे प्रसारित करने का अनूठा काम पिछले दस-पन्द्रह सालों की बड़ी उपलब्धि कहा जा सकता है।

बाल साहित्य में उत्कृष्टता के मापदण्डों पर साझा सहमति के चलते अब इसे सिर्फ़ एक उत्पाद की तरह नहीं, बल्कि समाज और बचपन के लिए एक बेहतरीन उपहार और योगदान की तरह देखा जा रहा है। 'नेशनल बुक ट्रस्ट', 'चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट', 'प्रथम', 'तूलिका', 'एकलव्य', 'एकतारा', 'मुस्कान' समेत तक़रीबन दो दर्ज़न प्रकाशकों ने अपने इस काम को निखारा है। इस कड़ी में 'टाटा ट्रस्ट' के पराग इनिशिएटिव ने बाल साहित्य हेतु विचार-विनिमय के लिए साझा मंचों की स्थापना की है। बाल साहित्य के क्षेत्र में 'पराग ऑनर लिस्ट' 2020 से शुरू हुई, इस पहल के तहत हर साल देशभर से चयनित उत्कृष्ट बाल साहित्य की सूची जारी की जाती है।

स्कूल पुस्तकालयों, बच्चों के साथ काम करने वाली सरकारी व ग़ैर-सरकारी संस्थाओं, वैकल्पिक या अनौपचारिक शिक्षण केन्द्रों के लिए यह सूची अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि यह सभी उम्र, वर्ग, आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि, पठन स्तर, विविध शैली, आदि को ध्यान में रखकर तैयार की जाती है। किताबों का चयन राष्ट्रीय स्तर के एक निर्णायक मण्डल द्वारा किया जाता है। इसमें बाल साहित्यकार, चित्रकार, शिक्षाविद्, सामाजिक कार्यकर्ता और भाषाविद् सम्मिलित हैं। संसार की विविधता, आसपास के परिवेश, भाषा का सौन्दर्य, आशा और सकारात्मकता का



संचार, स्थानीयता एवं मौलिकता का सम्मान, जीवन से जुड़ाव, सजीव और उत्कण्ठा बढ़ाने वाला चित्रांकन, हाशियाकृत समुदाय और पात्रों की आवाज़ें, पठनीयता का रस, आदि कुछ ऐसे मापदण्ड हैं जिनके आधार पर यह किताबें चुनी जाती हैं। उनपर कई दौर की बहसें / बातें होती हैं और सहमति के आधार पर ही इनका चयन किया जाता है। 'शुरुआती पाठक', 'नव पाठक' और 'किशोर पाठक' की श्रेणियों के लिए कविता, कहानी और कथेतर विधाओं पर हिन्दी और अँग्रेज़ी की चुनिन्दा बाल साहित्य किताबों की सूचियाँ जारी की जाती हैं।

ये चयनित और अनुशंसित किताबें हमारे समय, बदलाव, सरोकारों और प्रतिबद्धताओं का आईना कही जा सकती हैं। बच्चों को साहित्य का रसिक बनाने और उन्हें एक अच्छा संजीदा पाठक बनाने में इन किताबों की बड़ी भूमिका है।

इन किताबों में विषय, परिवेश, शैली और तासीर की विविधता देखने को मिलती है, जो बाल विकास और शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों, दोनों की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्कूल पुस्तकालयों की समृद्धि और सफलता इस तरह की किताबों पर चर्चा और बच्चों के लिए उनकी सहज उपलब्धता से ही सम्भव है। *नई शिक्षा नीति, 2020* भी पुस्तकालयों, विविध साहित्य और बच्चों के साथ उसके उपयोग पर ज़ोर देती है।

नई शिक्षा नीति, 2020 में पुस्तकालयों के सन्दर्भ में प्रतिबद्धता

- स्कूल और सार्वजनिक पुस्तकालयों (सरकारी) को विस्तार देने एवं पढ़ने व संवाद करने की संस्कृति को विकसित करने की ज़रूरत है। इस सन्दर्भ में पढ़ने की संस्कृति विकसित करने के लिए, देशभर में सार्वजनिक और स्कूल पुस्तकालयों का विस्तार किया जाएगा।
- पुस्तकालयों में स्थानीय और क्षेत्रीय भाषाओं में, विशेष रूप से बच्चों की किताबें भी शामिल होंगी। स्कूल और स्कूल परिसरों में स्थानीय भाषाओं में पुस्तकों का चयन किया जाएगा और शिक्षक सक्रिय रूप से बच्चों को किताबें पढ़ने और उन्हें घर ले जाने के लिए प्रोत्साहित करेंगे।
- पुस्तकालय के आसपास गतिविधियाँ की जानी चाहिए। जैसे– कहानी, रंगमंच, समूह में पढ़ना, लिखना और बच्चों के द्वारा लिखी गई मौलिक सामग्री व कलाओं का प्रदर्शन करना।

एक जीवन्त पुस्तकालय और उसके बेहतर इस्तेमाल की सम्भावना के लिए चुनिन्दा और उत्कृष्ट बाल साहित्य की जानकारी और उपलब्धता एक अहम क़दम है। पराग ऑनर लिस्ट में सम्मिलित कुछ किताबों का ज़िक्र विस्तार से इसलिए किया जा रहा है क्योंकि मेरी समझ से यह किताबें बच्चों के लिए अर्थपूर्ण हैं।

सबसे पहले लेखक संजीव कुमार की *बचपन की बातें* का ज़िक्र करूँगा। यह किताब प्रसिद्ध व्यक्तियों के बचपन की बात करती है। पढ़कर पता चलता है कि प्रसिद्ध-से-प्रसिद्ध व्यक्तियों का जीवन भी सामान्य चुनौतियों, सहज शैतानियों, उतार-चढ़ाव और मनमानियों से अछूता नहीं रहता। देश और दुनिया के कुछ मशहूर व्यक्तियों के बचपन की खट्टी-मीठी यादों को सँजोए हुए, इस किताब में बच्चों और बड़ों, दोनों के लिए साहित्य का भरपूर रस है। भारत के अभिनेता ओमपुरी, गायक मन्ना डे, कुंदनलाल सहगल, पक्षी विशेषज्ञ सालिम अली, बाँसुरीवादक हरिप्रसाद चौरसिया सहित वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन, हेलन केलर के अलावा कई और मशहूर हस्तियों के मज़ेदार जीवन प्रसंग इस किताब में शामिल हैं।

प्रख्यात बाँसुरीवादक हरिप्रसाद चौरसिया के बारे में इस किताब में कहा गया है कि उनके पिता उन्हें पहलवानी के अभ्यास में डालना चाहते थे, पर उसमें उनका मन नहीं लगता था। किस तरह वो पहलवानी के अभ्यास से बचकर निकल पाए और बाँसुरी के साधक बने, यह बच्चे ख़ुद पढ़ें या अभिभावक उन्हें साथ लेकर पढ़ें, दोनों ही अनुभव आनन्ददायी होने वाले हैं। यह किताब एक तरह से बचपन के प्रति हमारे नज़रिए को गढ़ती है और बचपन की रूढ़ छवि को तोड़ती है। बच्चे एक साझा जीवन जीते हैं, वयस्कों के नियंत्रण वाले परिवेश में वे किस तरह अपनी जगह बनाते हैं और ख़ुद को अभिव्यक्त करते हैं, यह अलग-अलग व्यक्तियों के बचपन के उदाहरणों में देखा जा सकता है।

एक अन्य किताब है जुगनू प्रकाशन की *दो बहनों की मसाईमारा यात्रा।* प्रसिद्ध नारीवादी कार्यकर्ता कमला भसीन और उनकी बहन बीना काक के संयुक्त लेखन में आई यह किताब एक ज़बरदस्त यात्रा वृत्तान्त है। किताब के बारे में एक टिप्पणी के अनुसार, “नए अनुभवों से गुज़रने और नई-नई खोजों के लिए व्यक्ति का स्वतंत्र होना ज़रूरी है।” यात्रा की बेहतर कहानियाँ अप्रत्यक्ष रूप से ‘स्वतंत्रता’ को एक मूल्य के तौर पर प्रतिष्ठित करती हैं। इस दृष्टि से यह किताब महत्त्वपूर्ण है। आमतौर पर, औरतें जब यात्रा पर निकलती हैं तो परिवार के साथ निकलती हैं जिसमें पुरुष होते हैं और वे ही यात्रा का नेतृत्व करते हैं। इस किताब में जिन यात्रियों का विवरण है, वे बिना किसी पुरुष को साथ लिए इस यात्रा पर निकल जाती हैं। इस तरह, यात्रा वृत्तान्त के ज़रिए हौसला देने वाली यह एक महत्त्वपूर्ण किताब है।



वरुण ग्रोवर का कहानी संकलन *पेपर चोर* कुछ ऐसे अनुभवों और दमदार लेखन का नमूना है जिन्हें पढ़ते हुए आप ख़ुद को और



सब अपनी-अपनी अन्तिम इच्छाएँ पूरी करने निकल पड़े हैं। पाँच मिनट बचे हैं, और पिंटू को गुलाबजामुन तक पहुँचना है। सब तरफ़ हड़बड़ी है। लोग ईश्वर का नाम लेकर जय-जयकार कर रहे हैं कि शायद प्रलय टल जाए। पिंटू को अब सिर्फ़ गुलाबजामुन की ही पड़ी है। जब सबकुछ नष्ट ही होने वाला है तो फिर अन्तिम इच्छा क्यों बाक़ी रह जाए। अन्ततः पिंटू गुलाबजामुन की दुकान तक पहुँच गया है, अब सिर्फ़ 10 सेकण्ड ही रह गए हैं। दुकान ख़ाली है। सब बाहर निकलकर, आँख मूँदकर बस उस अन्तिम क्षण

अपने आसपास को थोड़ा और जान पाएँगे। इस संकलन में कुल 7 कहानियाँ हैं। संकलन की कहानी 'करेजवा' आपको थ्रिल और रोमांच का अनुभव देगी। दुनिया ख़त्म होने से ठीक पहले मन की इच्छा पूरी कर लेने का मानवीय उपक्रम आपको पूरे समय तक कहानी से बाँधे रखता है। "परिवार में बाक़ी सब लोगों की अन्तिम इच्छाओं के बीच पिंटू की इच्छा है गुलाबजामुन खाने की। पांडेपुर की चौमानीवाली दुकान का गुलाबजामुन, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह कलेजे जितना नाजुक और रसीला है। हलवाई ग्राहकों से शर्त लगाते हैं कि प्लेट से उठाकर मुँह तक ले जाने में यह टूट न जाए तो इसके पैसे मत देना। इसलिए उस गुलाबजामुन का नाम करेजवा है। शाम को 6 बजकर 12 मिनट पर दुनिया के ख़त्म होने का ऐलान तमाम टीवी चैनलों पर हो चुका है। मम्मी-पापा अभी तक घर लौटकर नहीं आए हैं। एक बड़ा सितारा धरती से टकराने वाला है। पिंटू फ़ैसला करता है कि वह दुनिया के ख़त्म होने से पहले किसी भी हालत में करेजवा तो खा ही लेना चाहता है। घर से बाहर चारों तरफ़ भीड़-ही-भीड़ है। शायद

का इन्तज़ार कर रहे हैं, पर पिंटू दुकान में गुलाबजामुन खोज रहा है।"

ऐसा कथाशिल्प कम ही देखने को मिलता है। इसमें किशोर मन की आशंका, कौतूहल, दबी हुई इच्छाएँ और कुछ पा लेने की छटपटाहट का ऐसा जीवन्त वर्णन है कि आप बस धड़कते दिल के साथ पढ़ते चले जाते हैं। भाषा की दृष्टि से जो रवानगी हम सबको भाती है और जिससे पढ़ने का रस दूना होता हो, वह भाषा ही इन कहानियों की जान है। छोटी-बड़ी सात कहानियों का ये संकलन अनुभवों की विविधता लिए हुए है। साथ मिलकर पढ़ने पर इसका आनन्द अलग ही हो सकता है।

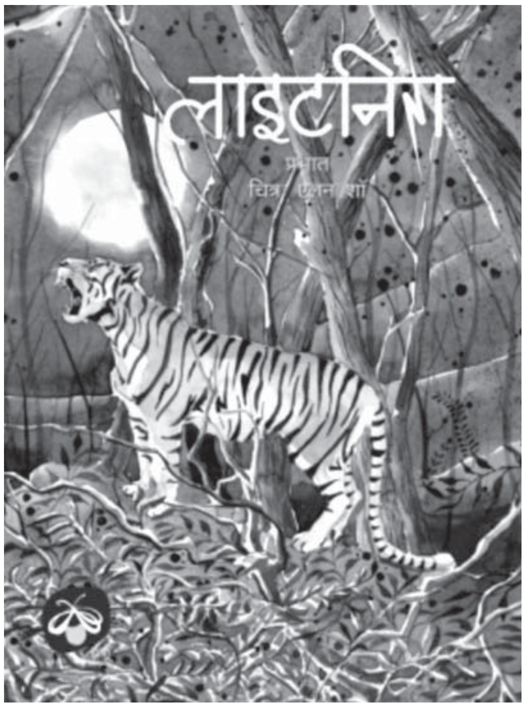
इसी सूची की एक और किताब नवीन सागर की कविताओं का ख़ज़ाना *तुम भी आना* है। इन कविताओं में एक ताज़गी है। बिलकुल नई कहन की बानगी देखिए, "नदी चढ़ी है तुम भी आना, तुम भी आना तुम भी आना, आए बादल घने उतरकर, उनसे हाथ छुआना, हवा गा रही तुम भी गाना, आना तुम भी आना..."। भाषा और

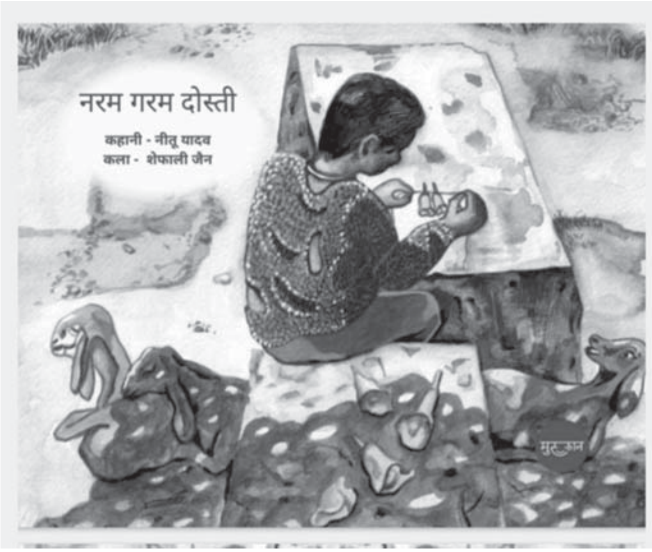


बिम्बों की जुगलबन्दी में भावनाओं की नमी और कहन की अपील आपको सहज ही छू जाएगी। या इसे देखिए, "रात अँधेरी पानी बरसा, मन हरसा मन हरसा, खिड़की लगी आज खिड़की-सी, घर को जाना घर-सा..."। इन पंक्तियों को पढ़ते हुए बारिश में गीली मिट्टी की सौंधी ख़ुशबू आ जाए तो हैरत न होगी।

इसी सूची में अरुण कमल का कहानी संकलन *एक चोर की चौदह रातें* अपने शिल्प में अनूठी किताब है। एकतारा प्रकाशन से आई इस किताब में एक चोर से लेखक की मुलाक़ात और उसकी चौदह रातों का ऐसा जीवन्त ब्योरा है, जो आपको उस चोर के बारे में नए सिरे से सोचने पर मजबूर कर देगा। एक रात वह चोर एक ऐसे घर में चोरी के लिए घुसता है जहाँ एक अकेली अपाहिज लड़की बिस्तर पर पड़ी हुई है। वह प्यास से बेहाल है, पास ही पानी का मटका और लोटा रखा हुआ है। चोर उस लड़की को पानी पिलाता है और उस लड़की से बातें करते हुए उसके बारे में और जानने की कोशिश करता है। किसी दूसरी रात वह सर्कस के एक मदारी से मिलता है जिसका जीवन उसके बन्दर और पालतू कुत्ते से बँधा हुआ है। सर्कस से अब गुज़ारा नहीं चलता, इसलिए अब मदारी चोरी की फ़िराक में रहता है। एक चोर दूसरे चोर की मदद करता है। मानवीय सादगी, त्रासदी और जीवन की आपा-धापी में लेखक के अलावा कितने ही किरदार इस चोर से जुड़ते चले जाते हैं। हर कहानी आपको एक नया अनुभव दे जाती है और आप इस कहानी में काफ़ी देर तक रहे आते हैं।

प्रभात की बिग पिक्चर बुक *लाइटनिंग* बाल साहित्य की दुनिया में एकदम नया प्रयोग है। राजस्थान की माटी में पले-बड़े प्रभात, लोक जीवन के कवि और कथाकार हैं। रणथम्भौर के जंगलों की मशहूर बाघिन 'लाइटनिंग' और उस ग्राम परिवेश से उसके दोस्ताना सम्बन्धों की ऐसी कहानी आपने





पहले कभी न पढ़ी होगी। एक सच्ची घटना को चित्र कथा में पिरोना और चित्रों व शब्दों का ऐसा ताना-बाना बुनना कि उसमें किरदार और पृष्ठभूमि जीवन्त हो उठे, यह लेखक और चित्रकार दोनों के कमाल से हुआ है। प्रभात की लेखनी और एलेन शॉ के चित्रों ने ये जादू तैयार किया है। उसका एक वाक्य आपको इसकी तासीर बताने के लिए काफ़ी है : "किसी पहाड़ी टीले पर खड़ी हो वह गरज़ती आवाज़ में पुकारती, रणथम्भौर... रणथम्भौर... रणथम्भौर... और जवाब में रणथम्भौर की हवाओं की सीटी जैसी आवाज़ गूँजती, लाइटनिंग... लाइटनिंग... लाइटनिंग..."। इस बिग बुक के चित्र आपकी देखी-अनदेखी बाघिन और जंगल की गहराई के जीते-जागते दृश्य को आपके सामने ला खड़ा कर देने की ताक़त रखते हैं। क्या बच्चे और क्या बड़े, इस किताब के जादू से कोई बच नहीं सकता।

पराग ऑनर लिस्ट में शामिल किताबें भारी विविधता लिए हुए हैं। मुस्कान प्रकाशन से आई नीतू यादव की लिखी हुई कहानी *नरम गरम दोस्ती* में अभावों के बीच दोस्ती की गर्माहट का भावपूर्ण और बारीक़ ब्योरा है। यह कहानी हमें वंचित समुदाय के जीवन यथार्थ के साथ मानवीय सरोकार से जोड़ती है। बच्चों और बड़ों, दोनों के लिए ही यह कहानी एक नया अनुभव देने वाली है।

इसी सूची में चंदन यादव की लिखी कहानियों का संकलन *बाघ भी पढ़ते हैं* शामिल है। चंदन यादव बहुत कम शब्दों में तीखी और गहरी बात कहने के फ़न में माहिर हैं। प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों और क़िस्सों की ज़मीन पर वे तात्कालिक, प्रासंगिक और इस समय की ज़रूरी बात की खेती करते हैं। उनकी फ़सल पकने में ज़्यादा वक़्त नहीं लेती। वो इसके लिए ज़्यादा शब्द और वक़्त नहीं ख़रचते। कई बार तो महज़ चन्द पंक्तियों में ही उनकी कहन का मक़सद पूरा हो जाता है और पाठक को पढ़ने का पूरा रस व पूरी तसल्ली मिलती है। 'ख़तरे में साँप' शीर्षक से लिखी उनकी कहानी देखिए, "सारे जानवर थे। बात चल रही थी कि ख़तरे में अपनी जान कैसे बचाएँ। देर तक बहस चली।



अन्त में सबको बन्दर की सलाह ठीक लगी। ख़तरे के समय 'सिर पर पैर रखकर भागना' सबसे अच्छा है। मीटिंग ख़त्म हुई और सारे जानवर अपने-अपने ठिकाने चले गए। सिर्फ़ साँप एक दूसरे का मुँह तकते बहुत देर तक वहीं बैठे रहे"। महज़ छः पंक्तियों में वो कहानी का पूरा संसार रच देते हैं।

ये इस सूची में शामिल किताबों की सिर्फ़ एक झलकभर है। हर साल इस सूची में अँग्रेज़ी-हिन्दी को मिलाकर कोई दो दर्ज़न के आसपास किताबें चयनित होती हैं। यह ख़ज़ाना हमारे समय का ख़ूबसूरत साहित्यिक ख़ज़ाना कहा जा सकता है। बच्चों के साथ इसे उलटिए-पलटिए, पढ़िए और इसपर बातें कीजिए। बच्चों को साहित्य से जोड़ने, उनके पढ़ने को रचनात्मक बनाने और इन किताबों के ज़रिए एक परिवार व समाज के रूप में कहीं ज़्यादा नज़दीक आने का ये अच्छा माध्यम बन सकता है।

सूची आगे के पन्नों पर दी गई है।

अनिल सिंह पिछले 20 बरसों से भी अधिक समय से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। गए 15 सालों से प्राथमिक शिक्षा ही उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र है। सात सालों तक भोपाल में वैकल्पिक स्कूल के मॉडेल आनन्द निकेतन से जुड़े रहे और वहाँ भाषा व सामाजिक विज्ञान शिक्षण का काम किया। वर्तमान में पराग के लाइब्रेरी एजुकेटर कोर्स में बतौर फ़ैकल्टी जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : bihuanandanil@gmail.com

पराग ऑनर लिस्ट (हिन्दी बाल साहित्य)

पराग ऑनर लिस्ट 2020

किताब	प्रकाशक	किताब	प्रकाशक
कैसा कैसा खाना	जुगनू प्रकाशन	बिक्सू	जुगनू प्रकाशन
घुड़सवार	जुगनू प्रकाशन	रानू... मैं क्या जानूँ?	जुगनू प्रकाशन
चमनलाल के पायजामे	जुगनू प्रकाशन	रेड सन के एलियन	चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट
चश्मा नया है	एकलव्य	सप्पू के दोस्त	जुगनू प्रकाशन
छुटकी और चीरो	एकलव्य	चार चटोरे	जुगनू प्रकाशन
जब मैं मोती को घर लाई	जुगनू प्रकाशन	चींटी चढ़ी पहाड़	जुगनू प्रकाशन
टिटहरी का बच्चा	जुगनू प्रकाशन	ठाँव-ठाँव घूमा	एकलव्य
तालाब के किनारे	मुस्कान	हाउ-हाउ-हप्प	एकलव्य
पेपर चोर	जुगनू प्रकाशन	दो बहनों की मसाई मारा यात्रा	जुगनू प्रकाशन
बकरी की साइकिल	एकलव्य	बचपन की बातें	एकलव्य

पराग ऑनर लिस्ट 2021

किताब	प्रकाशक	किताब	प्रकाशक
एक चोर की चौदह रातें	जुगनू प्रकाशन	स्कूल में हमने सीखा और सिखाया	मुस्कान
क्या तुम हो मेरी दादी?	जुगनू प्रकाशन	भूलभुलैया	एकलव्य
गोदाम	जुगनू प्रकाशन	हवा मिठाई	जुगनू प्रकाशन
जंगल किसका?	मुस्कान	चार चींटियाँ	एकलव्य
तारिक का सूरज	जुगनू प्रकाशन	तुम भी आना	जुगनू प्रकाशन
तीस की मुर्गी बीस में	एकलव्य	भाई तू ऐसी कविता क्यों करता है?	जुगनू प्रकाशन
पहली उड़ान	जुगनू प्रकाशन	मेरा खच्चर डण्डा है	एकलव्य
मिट्टी	मुस्कान		

पराग ऑनर लिस्ट 2022

किताब	प्रकाशक	किताब	प्रकाशक
एक कहानी	जुगनू प्रकाशन	केरल के केले	जुगनू प्रकाशन
ग्यारह रुपए का फाउण्टेन पेन	जुगनू प्रकाशन	बेटियाँ भी चाहें आज़ादी	प्रथम बुक्स
लाइटनिंग	जुगनू प्रकाशन	मछली नदी खोल के बैठी	एकलव्य
बस्ती में बाढ़	शहीद स्कूल	ये सारा उजाला सूरज का	एकलव्य
बीस कचौड़ी पूड़ी तीस	जुगनू प्रकाशन		

पराग ऑनर लिस्ट 2023

किताब	प्रकाशक	किताब	प्रकाशक
अकेली चींटी	जुगनू प्रकाशन	रज़ा के चित्र	जुगनू प्रकाशन
अम्मा	जुगनू प्रकाशन	गमले में जंगल	जुगनू प्रकाशन
इश्क का माता	जुगनू प्रकाशन	जिसके पास चली गयी मेरी ज़मीन	जुगनू प्रकाशन
तीसरा दोस्त	जुगनू प्रकाशन	जुगनू भाई	जुगनू प्रकाशन
दुनिया मेरी	जुगनू प्रकाशन	टके थे दस	जुगनू प्रकाशन
नरम गरम दोस्ती	मुस्कान	टिफिन दोस्त	एकलव्य
बाघ भी पढ़ते हैं	जुगनू प्रकाशन	पानी उतरा टीन पर	जुगनू प्रकाशन
मिट्टी का इत्र	जुगनू प्रकाशन	पेड़ों की अम्मा	जुगनू प्रकाशन
स्याणा	जुगनू प्रकाशन	फेरीवाले	एकलव्य
अगर मगर	जुगनू प्रकाशन	बना बनाया देखा आकाश, बनते कहाँ दिखा आकाश	जुगनू प्रकाशन
बेटा करे सवाल	एकलव्य		

संख्याओं के संसार में भटकते हुए एक ख़ूबसूरत सफ़र

विवेक कुमार मेहता

इस लेख में एक गणितीय सवाल के बारे में सोचने के रास्ते को बयाँ किया गया है। यह विवरण, गणित क्या है इस बारे में है और गणित करने का क्या आशय है, यह महसूस कराता है। लेख यह भी दर्शाता है कि गणित करने का एकमात्र अर्थ, दिए गए सवालों के जवाब तक पहुँचना नहीं है, बल्कि गणित, सवाल से जूझने की कोशिश है। इस कोशिश में ख़ुद से (और दूसरों से भी) किए सवाल मदद करते हैं। गणित सीखने-सिखाने में इस तरह की कोशिशों को सम्भव करना ज़रूरी है जहाँ सीखने वाले स्वतः सवाल से भिड़ सकें और भिड़े रहें। वे संख्याओं, गणितीय प्रतीकों के साथ जुड़ें और उनमें सम्बन्धों की पड़ताल करते हुए, अपने लिए नए सम्बन्ध खोज सकें। एक बार सवालों से जूझने का आत्मविश्वास आ जाए तो फिर सीखने वाले हमेशा उससे आनन्दित महसूस करेंगे और उसमें तल्लीन होकर यदि कुछ परेशानियाँ हों तो वह तक भूल जाएँगे। -सं.

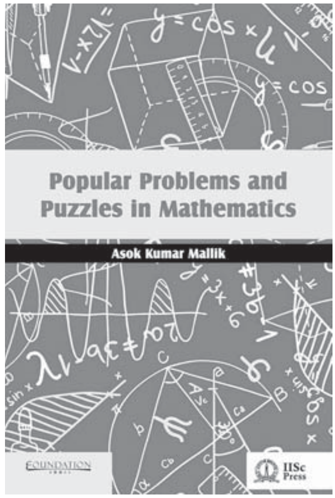
तबियत कुछ नासाज़ थी। हल्का बुख़ार, बदन दर्द और उसपर लगातार आ रही छींकों ने हालत ख़राब कर रखी थी। सोचा कि दवाई खाकर कुछ देर लेट लूँ। लेटा भी, लेकिन नींद का तो दूर-दूर तक कुछ अता-पता ही नहीं था क्योंकि दिमाग़ उलझा हुआ था एक सवाल में कि

$$S = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{6} + \frac{1}{10} + \cdots$$

इस सवाल का हल क्या होगा?



मेरे एक शिक्षक प्रोफ़ेसर मलिक ने गणित के अलग-अलग क्षेत्रों की कुछ लोकप्रिय पहेलियों व सवालों को इकट्ठा कर एक किताब[1] लिखी है। ये भी उन्हीं सवालों में से एक था। एक और बात जो इस सवाल को ख़ास बनाती है वो ये कि यह वही सवाल है जो हाइगेन्स (Huygens) ने युवा लाइबनिज़ (Leibnitz) से उस समय पूछा था जब लाइबनिज़ उनके पास गणित के गुर सीखने की इच्छा से गए थे। आप चाहें तो आगे पढ़ने से पहले इस सवाल को हल करने की कोशिश कर सकते हैं। क्या पता आपकी इस कोशिश में कोई नया तरीक़ा ही निकल आए इसे हल करने का।



हाइगेन्स और लाइबनिज़ तो नहीं रहे, लेकिन उनसे जुड़ा यह सवाल मेरे शिक्षक के चलते मेरे सामने था और मैं कोशिश कर रहा था इसे हल करने की। इसे हल करने की प्रक्रिया में पहला सवाल जो मेरे सामने था कि इस संख्या श्रेणी (number series) का अगला मतलब कि पाँचवाँ पद क्या होगा? ज़ाहिर था कि इस सवाल का जवाब भी दिए गए चार पदों से ही मिलने वाला था, क्योंकि इसके अलावा और कोई जानकारी थी नहीं! मुझे दिखाई दिया कि दिए गए चार पदों में से हर पद में अंश तो समान है (1 के बराबर है) और बदलाव सिर्फ़ हर की संख्या में आ रहा है, तो मैंने अपनी कॉपी में दिए गए पदों की हर की संख्याओं को कुछ इस तरह से लिखा :

पद	हर की संख्या
1	1
2	3
3	6
4	10
5	?
6	?
...	...

कुछ देर इसे निहारने के बाद मुझे दिखाई दिया कि पहली संख्या तो 1 है और दूसरी संख्या पहली संख्या में 2 जोड़ने से मिली है और तीसरी संख्या दूसरी संख्या में 3 जोड़ने से। इस नियम को मानें तो चौथी संख्या तीसरी संख्या में 4 जोड़ने से मिलनी चाहिए और ये बात एकदम सही बैठती है क्योंकि तीसरी संख्या है 6 और चौथी संख्या निकालने के लिए इसमें 4 जोड़ें तो हमें 10 मिलेगा जो कि दिए गए सवाल की भी चौथी संख्या थी। मुझे लगा जिस नियम की तलाश थी वो मुझे मिल गया। जिस पद की हर की संख्या चाहिए, उसके पिछले वाले पद की हर की संख्या में चाहे गए पद का नम्बर जोड़ना होगा, बस हो गया काम! उदाहरण के तौर पर, अगर दसवें पद की हर की संख्या चाहिए तो नौवें पद की हर की संख्या में 10 जोड़ दो। लेकिन फिर मुझे एहसास हुआ कि यह नियम मुझे इतना बतला देता है कि फलाँ पद के हर की संख्या कैसे निकलेगी, लेकिन वो

1. *Popular Puzzles and Problems in Mathematics*, Asok Kumar Mallik, Foundation Books.

संख्या क्या होगी इसकी सीधी जानकारी नहीं देता। अब दसवें पद की हर की संख्या के लिए नौवें पद की हर की संख्या पता होनी चाहिए। उसी तरह नौवें पद की हर की संख्या के लिए आठवें पद की हर की संख्या। आठवें के लिए सातवें, सातवें के लिए छठे करते-करते हम फिर पहले पद तक पहुँच जाएँगे। नियम कुछ ऐसा हो जो न केवल ये बताए कि अगली संख्या कैसे निकलेगी बल्कि यह भी कि संख्या क्या होगी।

मैंने एक दफ़े फिर से पदों की हर की संख्याओं को पिछले हर की संख्या और पद के नम्बर के जोड़ के रूप में लिखा, बस इस दफ़े पिछली हर की संख्या को उसके घटकों के योग के रूप में कुछ इस तरह :

पद	हर की संख्या	पिछला नियम	नया नियम
1	1	1	1
2	3	1+2	1+2
3	6	3+3	$\underbrace{1+2}_{\text{पिछले पद की संख्या}}+3$
4	10	6+4	$\underbrace{1+2+3}_{\text{पिछले पद की संख्या}}+4$
5	15	10+5	$\underbrace{1+2+3+4}_{\text{पिछले पद की संख्या}}+5$
6	21	15+6	$\underbrace{1+2+3+4+5}_{\text{पिछले पद की संख्या}}+6$
...	...	...	...
n			$\underbrace{1+2+3+4+5+\ldots+}_{\text{पिछले पद की संख्या}}(n\text{-}1)+n$

अबकी बार नियम एकदम साफ़ था। श्रेणी के पाँचवें पद का हर होगा 1+2+3+4+5, यानी कि 1 से लेकर 5 तक की सभी संख्याओं का योग। इसी तरह दसवें पद का हर 1 से लेकर 10 तक की सभी संख्याओं का योग, और सौवें पद का हर होगा– 1 से लेकर 100 तक की सभी संख्याओं का योग। इस तरह एक सामान्य नियम बनेगा कि n–वें पद का हर होगा– 1 से लेकर संख्या n तक की सभी संख्याओं का योग। मैंने कभी गणितज्ञ गॉस (Gauss) से जुड़ी एक कहानी सुनी थी, जिसमें उन्होंने 1 से लेकर संख्या n तक की सभी संख्याओं के योग का एक सीधा-सरल सूत्र सुझाया था। इस सूत्र के मुताबिक़, 1 से लेकर संख्या n तक की सभी संख्याओं का योग $\frac{n(n+1)}{2}$ के बराबर होता है। मैंने झट से इस सूत्र के इस्तेमाल से श्रेणी के शुरुआती पद निकालकर देख लिए और सन्तुष्ट हो गया कि श्रेणी के nवें पद का हर होगा– $\frac{n\times(n+1)}{2}$ के बराबर इस तरह श्रेणी का nवाँ पद होगा $\frac{1}{\frac{n(n+1)}{2}}$ या $\frac{2}{n(n+1)}$

पद	हर की संख्या
(n)	$\frac{n\times(n+1)}{2}$
1	$\frac{1\times(1+1)}{2}=1$
2	$\frac{2\times(2+1)}{2}=3$
3	$\frac{3\times(3+1)}{2}=6$
4	$\frac{4\times(4+1)}{2}=10$
5	$\frac{5\times(5+1)}{2}=15$
...	...

इस तरह श्रेणी $1+\frac{1}{3}+\frac{1}{6}+\frac{1}{10}+\cdots$ को बढ़ाकर मैंने कुछ इस तरह लिख लिया :

$$S = 1+\frac{1}{3}+\frac{1}{6}+\frac{1}{10}+\frac{1}{15}+\frac{1}{21}+\frac{1}{28}+\frac{1}{36}+\frac{1}{45}+\cdots+\underbrace{\frac{2}{n\times(n+1)}}_{n\text{–वाँ पद}}+\underbrace{\frac{2}{(n+1)\times(n+2)}}_{(n+1)\text{–वाँ पद}}+\cdots$$

पर यह बस प्रक्रिया की शुरुआत-भर थी जिसमें मुझे इन अनगिनत पदों का योग '*S*' निकालना था। पहाड़ तोड़ने जैसे इस काम को मैंने टुकड़ों-टुकड़ों में करने का मन बनाया। मैंने सोचा कि मैं पहले दो, फिर अगले दो, फिर उसके अगले दो, करते हुए दो-दो पदों का योग करता हूँ। शायद कुछ पैटर्न उभर आए।

$$S = \left(1+\frac{1}{3}\right)+\left(\frac{1}{6}+\frac{1}{10}\right)+\left(\frac{1}{15}+\frac{1}{21}\right)+\left(\frac{1}{28}+\frac{1}{36}\right)+\cdots+\left(\underbrace{\frac{2}{n\times(n+1)}}_{(n)\text{–वाँ पद}}+\underbrace{\frac{2}{(n+1)\times(n+2)}}_{(n+1)\text{–वाँ पद}}\right)+\cdots$$

$$= \left(1+\frac{1}{3}\right)+\frac{1}{2}\left(\frac{1}{3}+\frac{1}{5}\right)+\frac{1}{3}\left(\frac{1}{5}+\frac{1}{7}\right)+\frac{1}{4}\left(\frac{1}{7}+\frac{1}{9}\right)+\cdots+\frac{2}{(n+1)}\left(\frac{1}{n}+\frac{1}{(n+2)}\right)+\cdots$$

मुझे कुछ पैटर्न उभरता लगा और मैं आगे बढ़ा :

$$S = \left(\frac{4}{1\times3}\right)+\frac{1}{2}\left(\frac{8}{3\times5}\right)+\frac{1}{3}\left(\frac{12}{5\times7}\right)+\frac{1}{4}\left(\frac{16}{7\times9}\right)+\cdots$$

$$= \left(\frac{4}{1\times3}\right)+\left(\frac{4}{3\times5}\right)+\left(\frac{4}{5\times7}\right)+\left(\frac{4}{7\times9}\right)+\cdots$$

$$= 4\left(\frac{1}{1\times3}+\frac{1}{3\times5}+\frac{1}{5\times7}+\frac{1}{7\times9}+\cdots\right)$$

पैटर्न मुझे सुन्दर लगा, मैंने उसे बढ़ाकर कुछ यूँ लिख लिया :

$$S = 4\left(\frac{1}{1\times3} + \frac{1}{3\times5} + \frac{1}{5\times7} + \frac{1}{7\times9} + \frac{1}{9\times11} + \frac{1}{11\times13} + \frac{1}{13\times15} + \frac{1}{15\times17} + \cdots\right)$$

मैंने दोबारा से इस मौजूदा श्रेणी के दो-दो पदों को जोड़ने का सोचा।

$$S = 4\left\{\left(\frac{1}{1\times3} + \frac{1}{3\times5}\right) + \left(\frac{1}{5\times7} + \frac{1}{7\times9}\right) + \left(\frac{1}{9\times11} + \frac{1}{11\times13}\right) + \left(\frac{1}{13\times15} + \frac{1}{15\times17}\right) + \cdots\right\}$$
$$= 4\left\{\frac{1}{3}\left(\frac{1}{1} + \frac{1}{5}\right) + \frac{1}{7}\left(\frac{1}{5} + \frac{1}{9}\right) + \frac{1}{11}\left(\frac{1}{9} + \frac{1}{13}\right) + \frac{1}{15}\left(\frac{1}{13} + \frac{1}{17}\right) + \cdots\right\}$$

इस दफ़े भी एक पैटर्न उभर रहा था :

$$S = 4\left\{\frac{1}{3}\left(\frac{6}{1\times5}\right) + \frac{1}{7}\left(\frac{14}{5\times9}\right) + \frac{1}{11}\left(\frac{22}{9\times13}\right) + \frac{1}{15}\left(\frac{30}{13\times17}\right) + \cdots\right\}$$
$$= 4\left\{\frac{2}{1\times5} + \frac{2}{5\times9} + \frac{2}{9\times13} + \frac{2}{13\times17} + \cdots\right\}$$
$$= 8\left\{\frac{1}{1\times5} + \frac{1}{5\times9} + \frac{1}{9\times13} + \frac{1}{13\times17} + \cdots\right\}$$

मैंने मौजूदा श्रेणी के दो-दो पदों को जोड़ने का वही तरीक़ा तीसरी और फिर चौथी दफ़े अपनाया तब मुझे *'S'* के ये तमाम पैटर्न मिले :

$$S = 4\left\{\frac{1}{1\times3} + \frac{1}{3\times5} + \frac{1}{5\times7} + \frac{1}{7\times9} + \cdots\right\}$$
$$S = 8\left\{\frac{1}{1\times5} + \frac{1}{5\times9} + \frac{1}{9\times13} + \frac{1}{13\times17} + \cdots\right\}$$
$$S = 16\left\{\frac{1}{1\times9} + \frac{1}{9\times17} + \frac{1}{17\times25} + \frac{1}{25\times33} + \cdots\right\}$$
$$S = 32\left\{\frac{1}{1\times17} + \frac{1}{17\times33} + \frac{1}{33\times49} + \frac{1}{49\times65} + \cdots\right\}$$

ये पैटर्न देखने में ख़ूबसूरत थे लेकिन ये सभी बस उसी सवाल के अलग-अलग रूप भर थे जिसके साथ मैंने शुरुआत की थी, यानी कि

$$S = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{6} + \frac{1}{10} + \frac{1}{15} + \frac{1}{21} + \frac{1}{28} + \frac{1}{36} + \frac{1}{45} + \cdots + \frac{2}{n\times(n+1)} + \frac{2}{(n+1)\times(n+2)} + \cdots$$

मेरे दिमाग़ में ख़्याल आया कि पहाड़ अब भी जस-का-तस ही बना हुआ है। हाँ, ये बात और है कि मैं एक चक्कर लगाकर उसे तमाम अलग-अलग दिशाओं से देख आया हूँ और उसकी ख़ूबसूरती निहार आया हूँ। मुझे एहसास हुआ कि मेरा पिछला तरीक़ा मुझे हल की तरफ़ नहीं लेकर जा रहा इसलिए कोई नई जुगत भिड़ानी होगी।

मैं फिर शुरुआत पर पहुँच गया। श्रेणी के पदों को टुकड़ों-टुकड़ों में जोड़ने के अलावा और कोई तरीक़ा नहीं सूझ रहा था। पर जाने क्यों इस दफ़े दिमाग़ में एक ख़्याल आया कि अबकी बार श्रेणी की पहली संख्या को छोड़कर बाक़ी पदों के जोड़े बनाकर उन्हें जोड़ा जाए। मैं कुछ इस तरह आगे बढ़ा,

$$S = 1 + \left(\frac{1}{3} + \frac{1}{6}\right) + \left(\frac{1}{10} + \frac{1}{15}\right) + \left(\frac{1}{21} + \frac{1}{28}\right) + \left(\frac{1}{36} + \frac{1}{45}\right) + \cdots$$
$$= 1 + \frac{1}{3}\left(\frac{1}{1} + \frac{1}{2}\right) + \frac{1}{5}\left(\frac{1}{2} + \frac{1}{3}\right) + \frac{1}{7}\left(\frac{1}{3} + \frac{1}{4}\right) + \frac{1}{9}\left(\frac{1}{4} + \frac{1}{5}\right) + \cdots$$
$$= 1 + \frac{1}{3}\left(\frac{3}{2}\right) + \frac{1}{5}\left(\frac{5}{6}\right) + \frac{1}{7}\left(\frac{7}{12}\right) + \frac{1}{9}\left(\frac{9}{20}\right) + \cdots$$
$$= 1 + \frac{1}{2} + \frac{1}{6} + \frac{1}{12} + \frac{1}{20} + \cdots$$

आख़िरी चरण तक पहुँचते-पहुँचते मेरी आँखों में चमक आ गई। बदन दर्द, बुख़ार दोनों ग़ायब-से हो गए। मुझे हल दिखाई देने लगा। इस बार का तरीक़ा काम कर गया। पहाड़ ढह चुका था। मुझे आख़िरी चरण मिला :

$$S = 1 + \frac{1}{2} + \frac{1}{6} + \frac{1}{12} + \frac{1}{20} + \cdots$$

जिसे मैं कुछ इस तरह से भी लिख सकता था :

$$S = 1 + \frac{1}{2}\left(1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{6} + \frac{1}{10} + \cdots\right)$$

ध्यान दीजिए, कोष्ठक के अन्दर आने वाली श्रेणी वही है जिसका हमें हल निकालना है। चूँकि ये योग अनगिनत पदों का है इसलिए हमारी कोष्ठक की श्रेणी भी S को ही दर्शाएगी। इस तरह मुझे मिला :

$$S = 1 + \frac{1}{2}S$$

इससे हम आसानी से देख सकते हैं कि $S = 2$ होगा। मैंने अपने शिक्षक की किताब में सुझाया हल देखा। मेरा उत्तर तो सही था लेकिन उनका हल निकालने का तरीक़ा मेरे तरीक़े से अलग था। लेकिन बात सिर्फ़ इतनी होती तो शायद मैं ये लेख न लिखता। संख्याओं के संसार में मेरा असली सफ़र ये हल निकालने के बाद शुरू हुआ। मुझे लगा कि अगर $S = 2$ है तो उन ख़ूबसूरत पैटर्नों का क्या जो मुझे मेरे पहले अपनाए तरीक़े से मिले थे।

$$S = 4\left\{\frac{1}{1\times3} + \frac{1}{3\times5} + \frac{1}{5\times7} + \frac{1}{7\times9} + \cdots\right\}$$
$$S = 8\left\{\frac{1}{1\times5} + \frac{1}{5\times9} + \frac{1}{9\times13} + \frac{1}{13\times17} + \cdots\right\}$$
$$S = 16\left\{\frac{1}{1\times9} + \frac{1}{9\times17} + \frac{1}{17\times25} + \frac{1}{25\times33} + \cdots\right\}$$
$$S = 32\left\{\frac{1}{1\times17} + \frac{1}{17\times33} + \frac{1}{33\times49} + \frac{1}{49\times65} + \cdots\right\}$$

यानी कि वो सारे और उन जैसे तमाम पैटर्न जो मुझे तब मिलते अगर मैं अपने पहले तरीक़े की प्रक्रिया को लगातार दोहराता जाता। मैंने इन सारे पैटर्न में S का मान रखकर देखा। मुझे जो श्रेणियाँ मिलीं वो कुछ ऐसी थीं :

$$\frac{1}{2} = \frac{1}{1\times3} + \frac{1}{3\times5} + \frac{1}{5\times7} + \frac{1}{7\times9} + \cdots$$
$$\frac{1}{4} = \frac{1}{1\times5} + \frac{1}{5\times9} + \frac{1}{9\times13} + \frac{1}{13\times17} + \cdots$$
$$\frac{1}{8} = \frac{1}{1\times9} + \frac{1}{9\times17} + \frac{1}{17\times25} + \frac{1}{25\times33} + \cdots$$
$$\frac{1}{16} = \frac{1}{1\times17} + \frac{1}{17\times33} + \frac{1}{33\times49} + \frac{1}{49\times65} + \cdots$$

मुझे संख्याओं $\frac{1}{2}, \frac{1}{4}, \frac{1}{8}$ व $\frac{1}{16}$ का ऐसा स्वरूप मिल गया था जिसमें उन्हें अनगिनत पदों के योग के रूप में दर्शाया जा सकता था। और न केवल इन संख्याओं को, बल्कि अब मैं उन संख्याओं को भी अनगिनत पदों के योग के रूप में दर्शा सकता था जो मुझे अपने पहले तरीक़े की प्रक्रिया को लगातार दोहराने से मिलती यानी कि $\frac{1}{32}, \frac{1}{64}, \frac{1}{128}, \cdots$ ।

$\frac{1}{32}$ को अनगिनत पदों के योग के रूप में मैं कुछ इस तरह लिख सकता था :

$$\frac{1}{32} = \frac{1}{1\times33} + \frac{1}{33\times65} + \frac{1}{65\times97} + \frac{1}{97\times129} + \cdots$$

ठीक इसी तरह $\frac{1}{64}, \frac{1}{128}, \cdots$ व अन्य ऐसी संख्याओं को। $\frac{1}{2}, \frac{1}{4}, \frac{1}{8}, \frac{1}{16}, \frac{1}{32}, \frac{1}{64}, \frac{1}{128}, \cdots$ संख्याओं में एक समानता है कि हर अगली संख्या पिछली में $\frac{1}{2}$ का गुणा करने से मिलती है। यानी इन संख्याओं के हर 2^n के बराबर हैं, जहाँ n का मान 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, ... होगा। मुझे लगा कि इन पैटर्नों में एक सामान्य नियम छिपा हुआ है जिसे किसी संख्या p के लिए कुछ इस तरह लिखा जा सकता है :

$$\frac{1}{p} = \frac{1}{1\times(p+1)} + \frac{1}{(p+1)\times(2p+1)} + \frac{1}{(2p+1)\times(3p+1)} + \frac{1}{(3p+1)\times(4p+1)} + \cdots$$

अब मेरे सामने यह प्रश्न था कि क्या यह सामान्य नियम सिर्फ़ उन संख्याओं पर ही लागू होता है जिनके लिए $p = 2^n$, जहाँ n का मान 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7,... हो या ये नियम n के किसी भी मान के लिए लागू होता है। मिसाल के तौर पर, क्या यह नियम $n = \pi$ या $n = \sqrt{2}$ के लिए सही होगा? मुझे ऐसा लगता है कि ये नियम n के सभी मानों के लिए लागू होना चाहिए, लेकिन मैं अभी इसे सिद्ध नहीं कर पाया हूँ।[2] चाहें तो आप भी हाथ आज़मा सकते हैं। मुझे यक़ीन है हमारे पहले भी किसी-न-किसी ने इस नियम को ज़रूर ढूँढ़ निकाला होगा और शायद इसे सिद्ध भी किया होगा। लेकिन अपने-आप इसे सिद्ध कर पाने का मज़ा ही कुछ और होगा।

वैसे ज़रा इस सामान्य नियम में $n = -1$ यानी कि $p = 2^{-1} = \frac{1}{2}$ रखकर देखिए तो क्या मिलता है। संख्याओं के साथ थोड़ा खेलकर आप वहीं पहुँच जाएँगे जहाँ से ये लेख शुरू हुआ था।

2. हालाँकि कम्प्यूटर की मदद से कुछ ऐसी संख्याओं के लिए जाँच की है जिनमें n का मान 1, 2, 3, 4, 5, 6,... नहीं है। और इस पड़ताल में सफलता भी मिली है।

इस सवाल को हल करने की प्रक्रिया की शुरुआत में हालाँकि मैं थोड़ा भटका, लेकिन वो भटकाव ही मुझे एक सामान्य नियम तक लेकर आया। मुझे वो लाइनें याद आ गईं जो कभी भटकते हुए ही शायद मुझसे लिखा गई थीं कि

अच्छा है भटकाव भी
वो ज्ञान दिशा का देता है।

इस पूरे सफ़र मुझे यह भी लगा कि हर क़दम पर मैं कुछ आगे बढ़ रहा था और कुछ संघर्ष कर व्यापक प्रूफ़ तक पहुँच पाया जिससे मैं अब शायद इस तरह के अन्य सवाल सोचकर उनसे जूझ सकता हूँ। मैं जिस रास्ते पर चल रहा था उसमें कहीं भी मुझे पहले से पता नहीं था कि मैं हल कैसे निकालूँगा। और सवाल हल करने का स्वयं का रास्ता निकाल पाने से मैं कई और पैटर्न देख पाया जो शायद वैसे नहीं देख पाता। मैं यह भी देख पाया कि किसी सवाल के हल तक पहुँचने का कोई एक तरीक़ा नहीं होता और मुझे अपना ईजाद किया गया तरीक़ा ही ज़्यादा सरल लग रहा है। ख़ैर, यह एक नई चुनौती मेरे सामने है कि मैं शिक्षक के तरीक़े और अपने तरीक़े के बीच कड़ियों की तलाश कर पाऊँ और यह समझ पाऊँ कि एक जैसे न दिखते हुए भी क्यों यह एक जैसे ही हैं!

विवेक कुमार मेहता ने आईआईटी कानपुर से पीएचडी की है व इन दिनों तेजपुर यूनिवर्सिटी, असम के मैकेनिकल इंजीनियरिंग विभाग में पढ़ने-पढ़ाने का काम करते हैं।

सम्पर्क : vivekmehta7481@gmail.com

कविता की सप्रसंग व्याख्या

मनोज कुमार

यह लेख बताता है कि कविताओं को पढ़ाने का पारम्परिक तरीक़ा उन्हें कवि के जीवन और कविता के समय से बाँध देता है। प्रसंग और सन्दर्भ के साथ कविता को समझने का यह पारम्परिक तरीक़ा विद्यार्थी के कविता से जुड़ने के मौक़े कम कर देता है, और कविता को यांत्रिक तरीक़े से पढ़ने की ओर ले जाता है। लेखक बताते हैं कि कवि कविता के माध्यम 'से' नहीं, बल्कि कविता 'में' कहना चाहता है। विद्यार्थी कविता को अपना बना सकें, अपने देश-काल-परिस्थिति के मुताबिक़ उसे समझ सकें, यह आज़ादी कविता पढ़ते-पढ़ाते हुए होनी चाहिए। साथ ही लेख यह भी रेखांकित करता है कि कविता के पाठक को 'सहृदय' होना चाहिए। -सं.

"चन्दन की तुनक लचकीली डाली पर गुलाब जल से सनी दूध की छाली का अगर सु चिक्कन अवलेप बनाया जाए तो जो चित्र उभरेगा, वह सुमित्रानंदन पंत हैं।"

मेरे एक बड़े भाईसाहब ने 1977 में बिहार बोर्ड से मेट्रिक की परीक्षा पास की थी। उस परीक्षा की तैयारी के दौरान उन्होंने हिन्दी के तमाम कवियों का परिचय 'कण्ठस्थ' किया था। उन्हें अब भी यह पंक्ति याद है।

कवि-परिचय याद करने के लिए उन्होंने जो किताब पढ़ी थी, उसका नाम था– *कल्पतरु।* किस प्रकाशक ने यह किताब छापी थी, उन्हें अब याद नहीं है। कई साल पहले उनसे हुई बातचीत को मैंने रिकॉर्ड किया था। उस ऑडियो से गुज़रते हुए मुझे यह वाक्य सुनने को मिला। ठीक यही वाक्य मैंने अपने चाचाजी से भी सुना है, जो पास के क़स्बे के हाईस्कूल में कई दशकों तक हिन्दी के अध्यापक रहे। हिन्दी के अध्यापक के रूप में उस इलाक़े में आज भी उनकी ख्याति है।

सूरदास की, बालक कृष्ण सम्बन्धी कविताओं की व्याख्या शुरू करने से पहले प्रसंग के तौर पर विद्यार्थी आमतौर पर लिखते हैं, "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष-धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक-भाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल-कण्ठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैल मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी।" अभी भी विद्यार्थी इस उद्धरण को एक साँस में सुना जाते हैं, और सूरदास पर पूछी गई किसी भी सप्रसंग व्याख्या में प्रसंग की जगह एक झटके से लिख डालते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का सूरदास विषयक यह उद्धरण भले ही कविता से जुड़ा न हो, पर इसके असर का अनुमान उन्हें रहता है।

इन प्रकरणों पर सोचते हुए दो बातें तत्काल समझ में आ रही हैं। उनमें से एक है, स्कूली पाठ्यक्रम में छायावादी साहित्यिक परम्परा के उत्तरजीविता। छायावाद की भाषा और भाव, अभी तक हिन्दी कविता पढ़ने-पढ़ाने वालों के लिए अच्छे साहित्य की कसौटी बने हुए हैं।[1]

साहित्यिक पाठ, रचनाकार के सन्दर्भ के साथ-साथ पाठकों के सन्दर्भ से भी जुड़ा होता है। कविता के अर्थग्रहण की प्रक्रिया रचनाकार, रचना और पाठक के बीच एक असमाप्त संवाद की प्रक्रिया है। कविता के अध्यापन में 'सप्रसंग व्याख्या' की जो परिपाटी बनी उसमें अकसर इस संवाद का तीसरा संवादी, यानी पाठक (विद्यार्थी), अनुपस्थित होता है।

दूसरी बात है कि हिन्दी साहित्य के स्कूली अध्यापन में – शायद विश्वविद्यालयी अध्यापन में भी – छायावादी कवियों को उनकी कविताओं का नायक भी मान लिया गया। वे कविताओं के महज़ वाचक (या रचनाकार) नहीं रह गए। इसलिए कविता की व्याख्या के लिए बार-बार उनकी जीवनियों को टटोला गया। और हमेशा तो नहीं, लेकिन प्रायः उनकी जीवनियाँ बायोग्राफ़ी (जीवनी) की तरह नहीं, बल्कि हैजियोग्राफ़ी (जीवन-चरित) की तरह पेश की गईं।[2] मुझे लगता है, इस हैजियोग्राफ़िक परम्परा को जैसे-तैसे अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर और नागार्जुन तक क़ायम रखने की कोशिश चलती रही। हिन्दी के अध्यापकों के पास निराला, पंत या जानकी वल्लभ शास्त्री से जुड़े तमाम क़िस्सों का ख़ज़ाना होता है। कवियों के बारे में कहानियाँ उनके इर्द गिर्द प्रभामण्डल का निर्माण करती हैं। अकसर इन कहानियों से कविता की कोई समझ हासिल नहीं होती।

किसी स्कूली किताब में कविता का पाठ उठाकर देखिए। प्रायः पाठ की शुरुआत कवि-परिचय से होती है और अन्त शब्दार्थ के साथ। कभी-कभी शब्दार्थ पाठ के पहले भी दे दिए जाते हैं।

परीक्षा में किसी कविता से एक उद्धरण निकालकर उसकी 'सप्रसंग व्याख्या' करने को कहा जाता है। अपेक्षा यह होती है कि उस व्याख्या में कविता में मौजूद अनिवार्य सन्दर्भों के अलावा सारे प्रसंग लेखक के जीवन और उसके देशकाल के हों। कवि के जीवन की चमकदार कहानी से कविता को लपेटे बिना क्या कविता की समझ बनाना मुश्किल है? ज़रूरी नहीं कि कविता कवि के जीवन से ही जुड़े, वह पाठक या विद्यार्थी के जीवन-प्रसंगों से भी तो जुड़ सकती है! क्या कविता के अध्यापन में इस सम्भावना

---

1. छायावाद (1918-1936), जिसमें निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा जैसे कवि शामिल थे, को आधुनिक हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल कहा-समझा जाता है। लगता है कि छायावाद के बाद की कविता, पढ़ने-पढ़ाने वालों के सामान्य बोध में जगह नहीं बना सकी। भाषाई अलंकार, संस्कृतनिष्ठ भाषा और भावों की बहुलता इसी छायावादी परम्परा का हिस्सा है। इस समझ के मुताबिक़, 'कौन तुम संसृति जलनिधि तीर, तरंगों से फेंकी मणि एक / कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा का अभिषेक' (*कामायनी*, जयशंकर प्रसाद) जैसी काव्य पंक्तियाँ ज़्यादा कविता समझी जाएगी और 'सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई / झूठ क्या कहूँ। पूरे दिन मशीन पर खटना / बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई / का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना। / इस उस पर मन दौड़ाना। फिर उठ कर रोटी / करना। कभी नमक से कभी साग से खाना। / आरर डाल नौकरी है। यह बिलकुल खोटी / है। इसका कुछ ठीक नहीं है आना जाना।' (*आरर डाल*, त्रिलोचन) कम कविता होगी।

2. बायोग्राफ़ी (Biography) और हैजियोग्राफ़ी (Hagiography) किसी व्यक्ति के जीवन के वर्णन की दो शैलियाँ हैं। बायोग्राफ़ी में व्यक्ति के जीवन का तथ्यात्मक विवरण पेश किया जाता है और हैजियोग्राफ़ी में व्यक्ति के जीवन से जुड़े मिथक, कहानियाँ, क़िस्से, चमत्कार, आदि सब शामिल हो सकते हैं। तटस्थता और तथ्यपरकता बायोग्राफ़ी का गुण है जबकि हैजियोग्राफ़ी में इनकी अनिवार्यता नहीं होती। बायोग्राफ़ी आधुनिक समय का उत्पाद है, और हैजियोग्राफ़ी आधुनिक काल से पहले के समय का। मसलन, शरदचंद्र के जीवन पर विष्णु प्रभाकर की लिखी किताब *आवारा मसीहा* एक बायोग्राफ़ी है, और गोसाईं गोकुलनाथ रचित किताब *चौरासी वैष्णव की वार्ता* हैजियोग्राफ़ी।

की टोह ली जाती है? इस प्रकार कविता स्कूली बच्चों के लिए 'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर' पर पाई जाने वाली दुर्लभ वस्तु बनकर रह गई। विद्यार्थियों को यही सिखाया गया कि 'प्रसंग' में कवि के बारे में संस्कृतनिष्ठ भाषा में शब्दों का आडम्बर लिखना है, और व्याख्या में कविता का गद्यार्थ।

कविता का पाठ और उसकी व्याख्या पाठक के सन्दर्भ में कैसे पुनर्जीवित होते और बदलते हैं, इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। लेकिन यहाँ एक प्रसंग की चर्चा से इस प्रक्रिया को रेखांकित करने की कोशिश करूँगा। हरिवंश राय बच्चन की एक कविता है 'लहरों का निमंत्रण'। यह कविता 1937 में प्रकाशित होती है और उनके कविता संकलन *मधुकलश* में शामिल होती है। कविता का मुखड़ा है :

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

इन पंक्तियों को उस दौर के पाठकों ने सराहा और अपने सन्दर्भों में इसे समझा। बच्चनजी ने इस कविता में आगे की पंक्तियों में समष्टि या व्यापक जनता के दुःखों की कल्पना सागर की लहरों के रूप में की है जिससे कविता का वाचक एकाकार होना चाहता है।

सवाल अकसर इस प्रकार फ्रेम किया जाता है— 'इस कविता के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है?' पहली बात तो यह कि कवि, कविता के माध्यम से नहीं, बल्कि कविता के माध्यम में कुछ कहना चाहता है।

बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक के बाद आने वाले कई दशकों तक इन पंक्तियों की कोई ख़ास चर्चा नहीं हुई, लेकिन 1970 के मध्य में ये पंक्तियाँ पुनर्जीवित हो उठीं। सन 1973-74 में छात्रों का आन्दोलन गुजरात से लेकर बिहार तक फैल रहा था। यह आपातकाल से ठीक पहले के साल थे। छात्रों ने बुज़ुर्ग समाजवादी-सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण से अनुरोध किया कि वे उनके आन्दोलन का नेतृत्व करें। प्रसिद्ध है कि पटना के गाँधी मैदान में एक विशाल जनसभा आयोजित हुई जिसमें महिलाओं ने भी बड़ी संख्या में भागीदारी की थी। तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने इस सभा को रोकने के तमाम प्रयास किए, लेकिन पटना के गाँधी मैदान में जनसमुद्र उमड़ चला। कहा जाता है कि बुज़ुर्ग जयप्रकाश नारायण ने अपने उद्बोधन में बच्चन की इन पंक्तियों को गुनगुनाया था : 'तीर पर कैसे रुकूँ मैं, आज लहरों में निमंत्रण!'[3] उस सभा में मौजूद पाँच लाख लोगों ने तब इस कविता को अपने-अपने सन्दर्भों में गुनगुनाया और समझा होगा। इस तरह ये पंक्तियाँ पुनर्जीवित हो उठीं।

एक और उदाहरण उर्दू कविता से भी देखें। ग़ालिब जैसे शायरों की लोकप्रियता के पीछे अर्थ का पाठक-केन्द्रित होना ही है। वे इतने मक़बूल शायर इसीलिए हैं कि उन्हें हम अपने-अपने निजी और सामयिक सन्दर्भों में पढ़ पाते हैं। उनका एक शेर है, 'ईमाँ मुझे रोके है जो खींचे है मुझे कुफ़्र / काबा मिरे पीछे है कलीसा (गिरजाघर) मिरे आगे'। इस शेर को ग़ालिब के बारे में प्रचलित कहानियों से जोड़कर पढ़ा जा सकता है कि धार्मिकता से उनका कोई ख़ास लेना-देना नहीं था और वे अपने समय में अँग्रेज़ों के आने से प्रभावित थे। इस शेर को सन् 1857 के समय की स्थितियों के लिहाज़ से भी पढ़ा जाता रहा है कि उस दौर में मुग़ल बादशाहों की पुरानी दुनिया जा रही थी और अँग्रेज़ों की नई दुनिया आ रही थी। पर इन सन्दर्भों से ज़्यादा इस शेर की

3. देखें— 'गाँधी मैदान तब', के विक्रम राव, *जनसत्ता*, 20 अक्तूबर, 2014. https://www.jansatta.com/duniya-mere-aage/editorial-gandhi-maidan/3618/

अहमियत इसलिए है क्योंकि इसमें एक असम्भव द्वन्द्व मौजूद है। दो स्थितियों का खिंचाव, दो विरोधी भाव एक साथ यहाँ हैं, एक दूसरे से अलग दिशा में जाते हुए। विद्यार्थी या पाठक के जीवन में ऐसी स्थितियाँ बार-बार आती ही रहती हैं। ऐसे में वह इस शेर को अपने सन्दर्भ से पढ़ सकता है। उसके जीवन के बहुत सारे ऐसे अनुभव होंगे जहाँ भाव या स्थितियाँ परस्पर द्वन्द्व में होंगी। विद्यार्थी व्यक्तिगत द्वन्द्वों से इस शेर को पढ़ सकता है।

इस नज़र से देखें तो साहित्यिक पाठ, रचनाकार के सन्दर्भ के साथ-साथ पाठकों के सन्दर्भ से भी जुड़ा होता है। कविता के अर्थग्रहण की प्रक्रिया रचनाकार, रचना और पाठक के बीच एक असमाप्त संवाद की प्रक्रिया है। कविता के अध्यापन में 'सप्रसंग व्याख्या' की जो परिपाटी बनी उसमें अकसर इस संवाद का तीसरा संवादी, यानी पाठक (विद्यार्थी), अनुपस्थित होता है। हालाँकि पिछले कई दशकों से शिक्षा के क्षेत्र में बाल-केन्द्रित या विद्यार्थी-केन्द्रित शिक्षा की बात शुरू हुई है, लेकिन कविता के अध्यापन में विद्यार्थी कवि के 'कथ्य' का निष्क्रिय ग्रहणकर्ता होता है और शिक्षक उस अर्थ का संवाहक। कविता कक्षा में घटित नहीं होती है। यानी, अर्थग्रहण की प्रक्रिया जीवन्त नहीं होती, बल्कि यह एक घट चुकी घटना के पुनर्कथन का प्रयास होता है। सवाल अकसर इस प्रकार फ्रेम किया जाता है– 'इस कविता के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है?' पहली बात यह कि कवि, कविता के माध्यम *से* नहीं, बल्कि कविता के माध्यम *में* कुछ कहना चाहता है। कविता के अर्थग्रहण के लिए और कवि से संवाद करने के लिए पाठ के ज़रिए उस माध्यम में प्रवेश करना पड़ता है। फिर सार्थक संवाद में हर संवादी की सक्रिय भूमिका होती है। अगर हम चाहते हैं कि कविता कक्षा में घटित हो तो हमें विद्यार्थी को अपने सन्दर्भों के साथ इस संवाद में शामिल होने का आमंत्रण देना होगा।

सार्थक संवाद में हर संवादी की सक्रिय भूमिका होती है। अगर हम चाहते हैं कि कविता कक्षा में घटित हो तो हमें विद्यार्थी को अपने सन्दर्भों के साथ इस संवाद में शामिल होने का आमंत्रण देना होगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 के बाद बनी हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में कुछ ऐसे प्रयास हुए हैं। एक तो, इन किताबों में हिन्दी के मध्यकालीन और छायावादी कवियों के साथ-साथ बड़ी संख्या में आधुनिक और समकालीन कवियों की कविताओं को भी शामिल किया गया, दूसरी तरफ़ कविता को कक्षा में अलग तरीक़े से बरतने के संकेत भी दिए गए हैं। पाठ के अन्त में कई प्रकार के प्रश्न हैं। सवालों की एक श्रेणी है जिसे 'रचना और अभिव्यक्ति' के सवाल के रूप में वर्गीकृत किया गया है। उदाहरण स्वरूप, मंगलेश डबराल की कविता 'संगतकार' एनसीईआरटी की दसवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक में शामिल है। इस कविता के साथ दिए गए 'रचना और अभिव्यक्ति' के कुछ सवालों पर ग़ौर कीजिए :

"(8) कल्पना कीजिए, आपको किसी संगीत या नृत्य समारोह का कार्यक्रम प्रस्तुत करना है, लेकिन आपके सहयोगी कलाकार किसी कारणवश नहीं पहुँच पाएँ–

(क) ऐसे में अपनी स्थिति का वर्णन कीजिए।

(ख) ऐसी परिस्थिति का आप कैसे सामना करेंगे?

(9) आपके विद्यालय में मनाए जाने वाले सांस्कृतिक समारोह में मंच के पीछे काम करने वाले सहयोगियों की भूमिका पर एक अनुच्छेद लिखिए।" (कक्षा-10 की पाठ्यपुस्तक, *क्षितिज-2,* पाठ 6, एनसीईआरटी, नई दिल्ली)

पिछले कई दशकों से शिक्षा के क्षेत्र में बाल-केन्द्रित या विद्यार्थी-केन्द्रित शिक्षा की बात तो शुरू हुई है, लेकिन कविता के अध्यापन में विद्यार्थी कवि के 'कथ्य' का निष्क्रिय ग्रहणकर्ता होता है और शिक्षक उस अर्थ का संवाहक। कविता कक्षा में घटित नहीं होती है। यानी, अर्थग्रहण की प्रक्रिया जीवन्त नहीं होती, बल्कि यह एक घट चुकी घटना के पुनर्कथन का प्रयास होता है।

इन सवालों के ज़रिए या इन सवालों से संकेत लेकर कुछ अन्य ऐसे ही सवालों के ज़रिए कक्षा में रचनाकार, रचना और पाठक के बीच जीवन्त संवाद आयोजित करने की कोशिश की जा सकती है। शायद सीबीएसई स्कूलों में फ़ॉर्मेटिव असेसमेंट की खानापूर्ति के लिए इन सवालों के उत्तर लिखवा लिए जाते हों, लेकिन कविता-अध्यापन की 'सप्रसंग व्याख्या' वाली परिपाटी के कारण ऐसे सवालों के ज़रिए जीवन्त संवाद आयोजित करने की बहुत गुंजाइश नहीं होती है।

अध्यापन की इस परिपाटी की दूसरी दिक़्क़त है कि इस परिपाटी में कविता की भाषा को रचना का बाहरी माध्यम मान लिया जाता है जिसके ज़रिए कवि कुछ कहना चाहता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि कवि रचना के माध्यम से नहीं, बल्कि रचना के माध्यम में अपनी बात कहता है। आश्चर्य है कि संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों और काव्यशात्रियों ने ज़ोर देकर 'वाणी' और 'अर्थ'; 'कथ्य' और 'रूप' के अद्वैत की बात की है, लेकिन शायद 'साहित्य की सोद्देश्यता' के द्विवेदीयुगीन (1900-1918) विमर्श ने कालिदास, तुलसीदास जैसे बड़े रचनाकारों की इस अद्वैतवादी अन्तर्दृष्टि की अनदेखी कर दी। ज़ाहिर है कि जिस दौर में हिन्दी प्रदेश के स्कूलों और महाविद्यालयों में हिन्दी साहित्य का अध्यापन संहिताबद्ध हुआ, वह द्विवेदीयुगीन दौर ही था।[4] बहरहाल देखें कि कालिदास और तुलसीदास जैसे रचनाकारों ने 'वाणी' और 'अर्थ' के अद्वैत को लेकर क्या कहा है :

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

(रघुवंशम्, *प्रथमः सर्गः*)

इस श्लोक में कालिदास अपने उस आराध्य (शिव-पार्वती) की वन्दना करते हैं जो वाणी और उसके अर्थ की तरह एकरूप हैं। यानी, शिव और पार्वती उसी तरह एकरूप हैं जैसे 'वाणी' और 'अर्थ'। यहाँ ग़ौर करने लायक़ बात है 'वाणी' और 'अर्थ' की एकरूपता। तुलसीदास ने भी अपने आराध्य सीता और राम की एकरूपता के वर्णन के लिए 'वाणी' और 'अर्थ' की एकरूपता का ही अप्रस्तुत विधान किया है :

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

"जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जल की लहर की तरह कहने में अलग-अलग हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न (एक) हैं, उन सीता और राम के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुःखी बहुत ही प्रिय हैं।" यहाँ ग़ौर करने की बात है कि तुलसी बहुत सधे हुए तरीक़े से कह रहे हैं कि 'वाणी' और 'अर्थ' तात्त्विक (Ontological) दृष्टि से अभिन्न हैं, सिर्फ़ (ज्ञान) मीमांसा के लिए हमें उन्हें भिन्न मानना पड़ता है। 'कहियत भिन्न, न भिन्न' – कहने के लिए भिन्न, वास्तव में भिन्न नहीं।

4. देखें - Kumar, K. (1990). 'Quest for Self-Identity: Cultural Consciousness and Education in Hindi Region, 1880-1950'. *Economic and Political Weekly,* 25(23), 1247-1255.

यह एक महत्त्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि है जो परम्परा में मौजूद है। इसी प्रकार रचना के आस्वादन में 'सहृदय' की केन्द्रीय भूमिका को संस्कृत काव्यशास्त्र (*अभिनवगुप्त, आनंदवर्द्धन, मम्मट* आदि) में विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। 'सहृदय' की केन्द्रीयता के सिद्धान्त से अर्थग्रहण में पाठक की सक्रिय भूमिका की सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टि विकसित की जा सकती है। अँग्रेज़ी में लुईस रोसेनब्लॉट (Louise Rosenblatt) ने अर्थग्रहण में रचनाकार, पाठ और पाठक के बीच संवाद (transaction) की बात की है। कविता के अध्यापन की चली आ रही परिपाटी के बरअक्स हमें इन सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टियों को खँगालना होगा, तभी हम पाठ्यपुस्तकों में शामिल नई-पुरानी कविताओं को लेकर विद्यार्थियों के साथ सार्थक संवाद कर पाएँगे।

मनोज कुमार वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय में अध्यापक हैं। 'दिगन्तर', जयपुर और 'रूम टू रीड' इंडिया जैसी संस्थाओं के साथ काम करते हुए आपने प्रारम्भिक शिक्षा में ज़मीनी स्तर पर काम किया है। शिक्षा, साहित्य, संस्कृति और समसामयिक मसलों पर इनकी कई रचनाएँ हिन्दी और अँग्रेज़ी में प्रकाशित हुई हैं। इन्होंने बच्चों के लिए भी छिटपुट रचनाएँ लिखी हैं जो पत्रिकाओं में या पिक्चर बुक के रूप में प्रकाशित हुई हैं।

सम्पर्क : manoj.kumar@apu.edu.in

पढ़ने–लिखने में मौखिक भाषा की भूमिका

मीनू पालीवाल

हम यह जानते हैं कि भाषा मूलतः मौखिक ही होती है तब भी हम मौखिक भाषा को कक्षाओं में जगह नहीं देते। मौखिक भाषा और पढ़ना-लिखना सीखने में क्या सम्बन्ध है, इसकी पड़ताल करने के लिए कुछ गतिविधियाँ शिक्षकों के साथ की गईं। शिक्षकों का इन गतिविधियों को करने का अनुभव व विश्लेषण दर्शाता है कि मौखिक भाषा का विकास पढ़ने-लिखने की क्षमता को बहुत प्रभावित करता है। -सं.

बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने के दौरान उनकी मौखिक भाषाई क्षमता को अकसर नज़रअन्दाज़ किया जाता है।

बहुत-से शैक्षिक दस्तावेज़ों में यह बात दर्ज है कि पढ़ना सिखाने से पहले मौखिक भाषा का विकास किया जाना चाहिए। कृष्ण कुमार ने भी *बच्चे की भाषा और अध्यापक* में लिखा है कि जब बच्चा स्वयं के बारे में, अपने आसपास के बारे में आत्मविश्वास से बात करने लग जाए तब समझिए कि वो पढ़ना-लिखना सीखने के लिए तैयार है।

मौखिक भाषा का इतना महत्त्व क्यों ?

मौखिक भाषा पढ़ना, लिखना, तर्कशीलता, आदि जैसे सभी कौशलों का आधार है। नीचे दिए वाक्य पढ़ें और सोचें कि ये किस भाषा में लिखे हैं?

Main bazaar ja raha hoon.
आई एम गोइंग टू मार्केट।

जो भी निर्णय आपने लिया, ज़रा ठहरकर सोचें कि यह निर्णय आपने किस आधार पर लिया? यह निर्णय आप भाषा की प्रकृति के आधार पर ले रहे होंगे जिसके अनुसार हम समझते हैं कि भाषा मूलतः मौखिक होती है और लिपि भाषा को स्थाई करने का मात्र एक साधन है। भाषा के द्वारा ही हम स्वयं को और दुनिया को समझते हैं। कोई भी भाषा किसी भी लिपि में लिखी जा सकती है।

इस जानकारी के बावजूद, कि भाषा मूलतः मौखिक ही है, मौखिक भाषा को स्कूलों में जगह नहीं दी जाती। यह माना जाता है कि सुनना और बोलना बच्चे घर से सीखकर ही आते हैं और शायद यह भी कि इन कौशलों का पढ़ने और लिखने से कोई सम्बन्ध नहीं है। मौखिक भाषा पढ़ने को, पढ़कर अर्थ प्राप्त करने को

बच्चे :

- विविध उद्देश्यों के लिए अपनी भाषा अथवा / और स्कूल की भाषा का इस्तेमाल करते हुए बातचीत करते हैं, जैसे– कविता, कहानी सुनाना, जानकारी के लिए प्रश्न पूछना, निजी अनुभवों को साझा करना।
- सुनी सामग्री (कहानी, कविता आदि) के बारे में बातचीत करते हैं, अपनी राय देते हैं, प्रश्न पूछते हैं।
- भाषा में निहित ध्वनियों और शब्दों के साथ खेलने का आनन्द लेते हैं, जैसे– इन्ना, बिन्ना, तिन्ना।

बहुत प्रभावित करती है। एक कार्यशाला में की गई कुछ गतिविधियों में हमने यह अनुभव किया कि हमारी सुनने और बोलने की क्षमता पढ़ने और लिखने को कैसे प्रभावित करती है।

इन गतिविधियों में हमने तीन टेक्स्ट इस्तेमाल किए। (1) अवधी लघुकथा (कहानी स्तर), (2) विभिन्न भाषाओं में लिखा एक पर्चा (वाक्य स्तर), और (3) लेखन में शब्द स्तर की गतिविधि इस्तेमाल की गई।

लघुकथा का टेक्स्ट नीचे दिया गया है। सभी शिक्षकों को पहले इसे व्यक्तिगत रूप से मन में पढ़ने को कहा गया। इसके बाद एक शिक्षक से कहा गया कि वे इसे बोलकर पढ़ें। यह काम अलग-अलग शिक्षक समूहों के साथ किया गया और एक समूह में लगभग 30 शिक्षक थे।

शिक्षकों के द्वारा पढ़े जाने पर अवलोकन

नीचे कहानी में कुछ शब्दों को चिह्नांकित किया गया है। उन शब्दों को पढ़ने में बहुत-से शिक्षकों को परेशानी हुई। यह परेशानी क्यों हुई? शायद आप इस निष्कर्ष पर पहुँच ही गए होंगे कि हम इस तरह नहीं बोलते, इसलिए इन शब्दों को पढ़ने में परेशानी हुई। पर सिर्फ़ इतना कहना ही काफ़ी नहीं है। इसे और बारीक़ी से देखने की ज़रूरत है ताकि बच्चों को पढ़ना सिखाते वक़्त हम ज़्यादा सचेत रहें।

- इस भाषा में 'ऐ' और 'औ' की मात्रा का ज़्यादा इस्तेमाल होता है। इसे चेक करने के लिए आप ऊपर वाले अनुच्छेद और इस कहानी में मात्राओं की संख्या गिन सकते हैं।
- 'हमहूँ' और 'हयं' में अन्त में चन्द्रबिन्दु और अं की बिन्दी का उच्चारण करना आसान नहीं था। कई बार इसका उच्चारण किया ही नहीं गया।
- "ताईं तौ ओहके" वाक्य के इस हिस्से को पढ़ने में बहुत-से शिक्षकों के प्रवाह में कमी आई, और 'ताईं' शब्द में बिन्दी का उच्चारण किसी ने भी नहीं किया।
- कहानी में 'यक' शब्द का प्रयोग है। इस क्षेत्र में 'एक' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। जब मैंने इस बात पर प्रतिभागियों का ध्यान दिलाया तब एक शिक्षिका ने कहा कि वो 'यक' को अब तक 'एक' ही पढ़ रही थीं। उनका

जी सरकार ! (अवधी लघुकथा)

यक सेठ के खाना बनावै वाला यक भंडारी रहा। ऊ सेठ कै बज्र चापलूस रहा। यक दिन सेठ कहिन– "भंडारी, बैगन से बढ़िया कौनौ तरकारी नाहीं।"

भंडारी कहिस– "जी सरकार, यही के ताईं तो ओहके सर पै भगवान ताज धइ दिहिन।"

यक रोज सेठ हचकके बैगन के सब्जी खाइन अउ पेट खराब होइगा। अगले दिन कहिन– "भंडारी, बैगन- भांटा से खराब कौनौ तरकारी नाहीं।"

भंडारी कहिस– "जी सरकार, यहिमा कोनौ गुनै नाहीं हुअत। यहीसे तौ बंगाली लोग यहिका बेगुन कहत हयं।"

सेठ कहिन– "वहि रोज तौ बैगन कै बड़ा गुन गावत रहेव। आज अस कहत अहौ?"

भंडारी कहिस – "जी सरकार, वहि रोज आप बैगन कै तारीफ किहिन तौ हमहूँ किहेन। आज आप खराब कहत अहैं तौ हमहूँ खराब कहत अहन। हम आपकै नौकर हन, बैगन कै नौकर थोड़ै हन।"

ध्यान इस बात पर गया ही नहीं कि 'यक' लिखा है 'एक' नहीं।

- "जी सरकार! वहि रोज आप बैगन कै तारीफ किहिन तौ हमहूँ किहेन" वाक्य को पढ़ते समय 'हमहूँ किहेन को 'हमहू कहे दिए" पढ़ा गया। इस तरह और भी कुछ शब्दों को शिक्षकों के द्वारा पढ़ने में बदला गया।
- 'वहि' शब्द में शिक्षकों से पूछा गया कि जब एक शिक्षक साथी ने इस कहानी को बोलकर पढ़ा तो कौन-सा स्वर इस्तेमाल किया बड़ा या छोटा? इस प्रश्न का उत्तर नहीं आया। यह अजीब बात है कि बच्चों का हर स्वर (उच्चारण) सुधारने की प्रक्रिया हमेशा करते रहने के बावजूद, यहाँ पर समूह से इस प्रश्न का उत्तर नहीं आया। शायद वे भी अर्थ / कहानी का मज़ा लेने में खो गए थे, जिस बात की आज़ादी अनजाने में बच्चों को नहीं दी जाती क्योंकि वहाँ यह सोच हावी हो जाती है कि ठीक से उच्चारण नहीं करेंगे तो बच्चे समझ नहीं पाएँगे। परन्तु 'वहि' में छोटा स्वर लिखे होने के बावजूद बड़ा स्वर पढ़ा गया था क्योंकि हिन्दी में 'वही' शब्द उपयोग किया जाता है।

मौन वाचन के बाद शिक्षकों से पूछा गया :

सहजकर्ता : "क्या कहानी एक ही बार में पढ़कर समझ आ गई या 3-4 बार पढ़ना पड़ा?"

ज़्यादातर शिक्षक : "एक बार में समझ आ गई।"

सहजकर्ता : "क्या मन में पढ़ते समय भी आपको कुछ शब्दों को पढ़ने में परेशानी हुई?"

ज़्यादातर शिक्षक : "हाँ!"

सहजकर्ता : "क्या जिन शब्दों को पढ़ने में परेशानी हुई उनकी वजह से आप दोहरा-दोहरा कर हर वाक्य पढ़ रहे थे या एक हिस्से का पूरा अर्थ समझने के कारण आपको दोबारा या उच्चारण सुधार के लिए नहीं पढ़ना पड़ा?"

ज़्यादातर शिक्षक : "हर जगह दोहराव की ज़रूरत नहीं पड़ी।"

सहजकर्ता : "उच्चारण में कई जगह परेशानी होने के बावजूद आपको यह कहानी समझ में आ गई। इसका मतलब इस कहानी में उच्चारण का समझ में कितना प्रतिशत योगदान रहा?"

एक शिक्षक का पहला उत्तर : "50 प्रतिशत।"

सहजकर्ता : "आपको नहीं लगता यदि सच में उच्चारण का समझ में 50 प्रतिशत महत्त्व होता तो आपको एक बार में कहानी समझ नहीं आती?"

कोई जवाब नहीं आया।

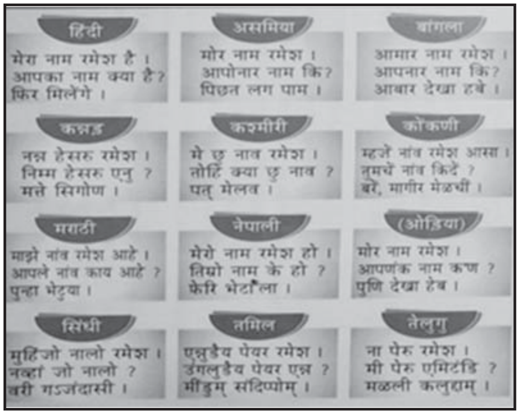
वही प्रश्न दोबारा पूछा गया : "उच्चारण में कई जगह परेशानी होने के बावजूद आपको यह कहानी समझ में आ गई। इसका मतलब उच्चारण का कहानी समझने में कितना प्रतिशत योगदान रहा होगा?"

"20 से 25 प्रतिशत" (यही उत्तर लगभग 5 समूहों में आया। एक समूह में 30 शिक्षक थे)।

उच्चारण की इतनी परेशानी के बाद भी शिक्षक समूह एक बार में ही कहानी समझ गए, लेकिन कक्षा में पढ़ना सुधारने के लिए बस उच्चारण पर ही काम किया जाता है। यह कम ही देखने में मिलता है कि बच्चे के पढ़ लेने के बाद यह पूछा जाए कि बताओ पढ़े गए अनुच्छेद में तुम्हें क्या समझ आया या जो पढ़ा उसे अपने शब्दों में बताओ।

जैसा कि हमने देखा, शिक्षकों को अवधी लघुकथा को पढ़ने में ज़्यादा परेशानी नहीं आई, हालाँकि उच्चारण की कुछ ग़लतियाँ सभी शिक्षकों के पढ़ने में थीं। उच्चारण का पढ़ने की





समझ से कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं है, यह पुख़्ता करने के लिए एक अन्य पर्चा इस्तेमाल किया गया। (ऊपर दिया गया चित्र देखें।)

शिक्षकों से 3 भाषाओं में लिखे वाक्य बोलकर पढ़ने को कहा गया। इसमें हर शिक्षक ने उच्चारण की ग़लती की। पढ़ने के फ़्लो में भी कुछ पैटर्न देखने को मिले। मसलन, किसी शब्द को पढ़ने के लिए थोड़ा ज़्यादा समय लगना, कुछ शब्दों को बदल देना, कहीं-कहीं वाक्य को सिर्फ़ डिकोडिंग के आधार पर शब्द-दर-शब्द बिलकुल वैसे ही पढ़ना जैसे कक्षा में कुछ बच्चे पढ़ते हैं।

इस पर्चे को पढ़ने के बाद नीचे दिए प्रश्नों पर शिक्षकों से चिन्तन करने के लिए कहा गया :

- किस भाषा को पढ़ने में आपको सबसे ज़्यादा परेशानी हुई? और क्यों?
- क्या ऐसी भाषा को पढ़ने में परेशानी हुई जहाँ आप सारे वर्ण और मात्रा जानते थे? और क्यों हुई?
- हिन्दी के अलावा और किस भाषा को पढ़ने में आपको तुलनात्मक रूप से आसानी हुई?
- किन शब्दों को पढ़ने में ज़्यादा परेशानी हुई?
- क्या अब वो शब्द हम एकदम सही पढ़ सकते हैं?
- क्या आप पूरे आत्मविश्वास से कह सकते हैं कि एमिटंडि शब्द में आप 'ड' वर्ण में छोटा स्वर प्रयुक्त कर पाए?
- क्या पढ़ने के दौरान आपने कुछ शब्दों को बदला?

इन प्रश्नों पर प्रतिक्रिया थी कि तमिल और तेलुगु पढ़ने में सबसे ज़्यादा परेशानी आई। अक्षर-मात्रा से तो हम परिचित हैं, परन्तु इस भाषा से नहीं। यहाँ प्रश्न था कि भाषा से परिचित होने की क्या ज़रूरत है? इन अक्षर-मात्राओं से एक लम्बे समय से परिचित भी हैं फिर इस तरह की ग़लतियाँ क्यों हुईं?

शिक्षकों ने तब कहा कि ये शब्द हम इसलिए नहीं पढ़ पाए क्योंकि हम इन शब्दों को बोलते नहीं हैं। पढ़ने में कुछ शब्दों को बदलकर भी पढ़ा गया। इसी तरह और भी बहुत-से शब्दों को ग़लत पढ़ा गया।

लग - लागा, पाम - नाम, किदें - किंदे, कौबगे - कौबेके, तिम्रो - निमरो (नेपाली)

आपले नाव काय आहे; काय - काहे (मराठी)

पुणि देखा हेब; हेब - हब (ओडिया)

माने, पढ़ना केवल अक्षर-मात्रा जोड़कर उच्चारित करना नहीं होता। यदि ऐसा होता तो हम सब वयस्कों से इस पर्चे को पढ़ने में इतनी सारी ग़लतियाँ नहीं होतीं।

लेकिन ग़लत पढ़ने की क्या-क्या वजहें हो सकती हैं? क्या ग़लती की वजह अलग-अलग होगी तो निराकरण के तरीक़े भी अलग होंगे?

मौखिक भाषा की वजह से किन्हीं शब्दों को पढ़ने में परेशानी आती है तो फिर निराकरण क्या होगा?

आमतौर पर हर उच्चारण की ग़लती के लिए अक्षर-मात्रा ध्यान से देखने को कहा जाता है या पढ़कर बता दिया जाता है। बच्चों के पढ़ने में ग़लती के बहुत-से कारण हो सकते हैं। मसलन, अनुमान में ग़लती, पूर्व-क्षमताएँ और पूर्व-अनुभव, ग्राफ़िक समानता (शब्दों का एक जैसा दिखना जैसे– बाहर-बारह, घर-मर, मई-भाई), मौखिक भाषा का प्रभाव (यक-एक, गिलहरी-गिलेरी), कुछ ख़ास वर्णों के उच्चारण में परेशानी (श्र, ष, श, व, ब; आशीर्वाद, आश्रम, आश्चर्य, आदि।

जब वजह अलग-अलग हैं तो उनपर काम करने के तरीक़े भी अलग ही होने चाहिए। ये तरीक़े / उपाय इस बात की रोशनी में होंगे कि पढ़ने का उद्देश्य ही अर्थ प्राप्त करना है। जैसे अनुमान में ग़लती पर हम उस स्किल पर काम करेंगे, यानी हम बच्चे को आधा वाक्य बोलकर बताएँ और उससे पूछें कि इस वाक्य में आगे क्या आ सकता है?

रमा ने कुत्ते के पैर से घाव साफ़ किया और .... ('पट्टी बाँधी' लिखे हुए हिस्से को उँगली से छिपा दें)।

दूसरा, उनके साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा मौखिक भाषा पर काम करना, कहानियाँ-कविताएँ, विवरण सुनना, अधूरी कहानी पूरी करवाना, कविताएँ बनाना, आदि कई अभ्यास हो सकते हैं।

मौखिक भाषा के कारण यदि परेशानी हो रही है तो इस बात पर ग़ौर करें कि बच्चा उस शब्द का अर्थ क्या समझ रहा है। जैसे– तैरना को तेहेरना, बहुत को बोहोत, बहन को बेहेन पढ़ना, आदि। आप देख सकते हैं कि इन उदाहरणों में अर्थ नहीं बदल रहा है, इसलिए हमें ज़्यादा परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। जितना ज़्यादा हम बच्चों से बात करेंगे और बच्चों को उन शब्दों को सुनने का मौक़ा देंगे जिनका उच्चारण वे (बच्चे) लिखे हुए से अलग कर रहे हैं, आप पाएँगे कि एक समय के बाद बच्चे आपके उच्चारण को सुनकर वैसा ही बोलने लग जाएँगे। मौखिक भाषा की वजह से होने वाली ग़लती असल में ग़लती है ही नहीं, क्योंकि बच्चे के क्षेत्र में वही बोला जाता है। इसपर काम करना कुछ समय की माँग करता है। कोई शब्द पूरी तरह ग़लत पढ़ा गया और यदि वह शब्द उस पाठ / वाक्य का अर्थ प्राप्त करने के लिए ज़रूरी है, तो सही उच्चारित करके बताया भी जा सकता है और ऐसे शब्द को कक्षा की 'शब्द दीवार' का हिस्सा भी बनाया जा सकता है। बच्चे के क्षेत्र में उस शब्द के लिए कौन-सा शब्द इस्तेमाल किया जाता है, यह पूछकर उसकी भाषा को भी कक्षा में स्थान दिया जा सकता है।

मौखिक भाषा और पढ़ने का लिखने पर प्रभाव

लेखन ठीक करने के लिए भी सिर्फ़ उच्चारण पर ही पूरी मेहनत की जाती है। इस खण्ड में इन 6 शब्दों का डिक्टेशन दिया गया :

1. समूहीकरण
2. व्याख्यात्मक
3. सार्वभौमिक
4. कैप्शनिंग
5. इंपॉर्टेंट
6. सॉफ्टवेयर

<u>सहजकर्ता</u> : "क्या समूहीकरण लिखते वक़्त आपको उच्चारण ध्यान से सुनना पड़ा या बोलकर देखना पड़ा कि 'म' में बड़ा 'ऊ' और 'ह' में छोटी 'इ' का उच्चारण है?"

शिक्षक समूह : "नहीं!"

सहजकर्ता : "फिर आपने यह शब्द सही कैसे लिख लिया?"

शिक्षक समूह : "इस शब्द को बहुत बार सुना है।"

सहजकर्ता : "क्या आपको इंपॉर्टेंट लिखने में उच्चारण की मदद या लिखने में थोड़ा ज़्यादा समय लगा?"

शिक्षक समूह : "हाँ!"

सहजकर्ता : "क्या आपके अगल-बग़ल में बैठे शिक्षकों ने इंपॉर्टेंट की वर्तनी आपके जैसी ही लिखी है?"

शिक्षक समूह : "थोड़ा अन्तर है।"

सहजकर्ता : "क्या यही अन्तर समूहीकरण लिखने में भी है?"

शिक्षक समूह : "नहीं।"

सहजकर्ता : "आपने समूहीकरण और इंपॉर्टेंट दोनों शब्द ही काफ़ी बार सुने हैं परन्तु एक शब्द लिखने में आपको समय कम लगा बनिस्बत दूसरे के। ऐसा क्यों?"

शिक्षक समूह : "इंपॉर्टेंट शब्द हमने हिन्दी में लिखा नहीं देखा।"

सहजकर्ता : "इसका मतलब आपने समूहीकरण बार-बार लिखा देखा है, इसलिए आप यह शब्द सही लिख पाए न कि उसके सटीक उच्चारण के कारण।"

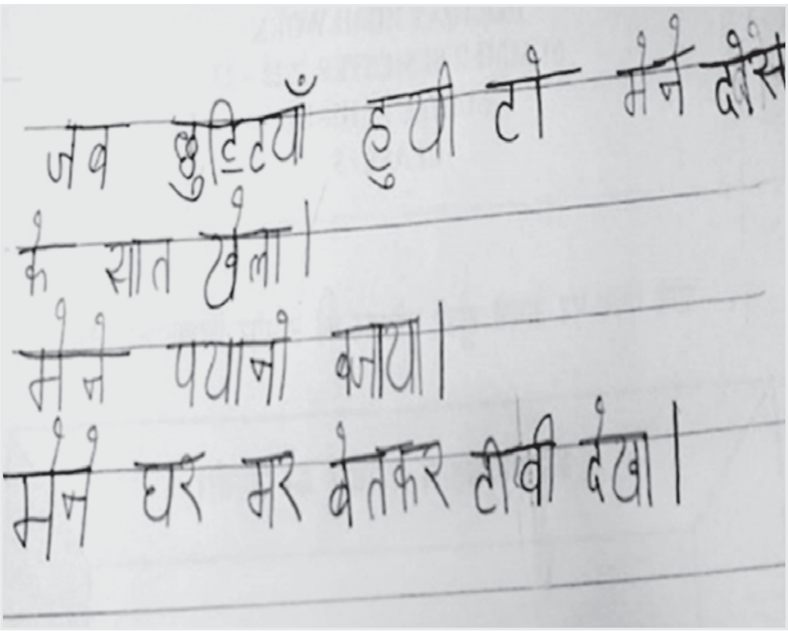
डिक्टेशन में सार्वभौमिक, व्याख्यात्मक शब्द को दोहराना पड़ा क्योंकि समूह उन शब्दों को सुन नहीं पाया। कुछ शिक्षकों ने इन शब्दों को दोबारा बोलने का आग्रह किया, और 'कैप्शनिंग' शब्द तो हर समूह में 3 से 4 बार दोहराना पड़ा।

सहजकर्ता : "कैप्शनिंग शब्द को सुनकर लिखने के लिए हमें 3 से 4 बार दोहराव की ज़रूरत पड़ी, सुनने की क्षमता तो एक-सी ही थी, फिर ऐसा क्यों हुआ?"

शिक्षक समूह : "यह शब्द हमने पहले नहीं सुना है। इसके अर्थ से भी हम अपरिचित हैं।"

इसका मतलब हमें क्या सुनाई देता है वह इस बात पर भी निर्भर करता है कि क्या पहले हमने उस शब्द को सुना है, क्या वह हमारे बोलचाल का हिस्सा है, और क्या हम उसका अर्थ जानते हैं?

कक्षा में बच्चों से भी इसी तरह की पढ़ने और लिखने की ग़लतियाँ होती हैं, जैसी हम वयस्कों से हुईं। इन्हें सीखने के चरणों की तरह



देखा जाना चाहिए। ज़रा कक्षा 2 के बच्चे के लेखन को देखिए। कक्षा 2 में लेखन सम्बन्धित सीखने का प्रतिफल व्याकरणिक शुद्धता की बात नहीं करता, बल्कि अपने मन के विचारों को स्व-वर्तनी की मदद से भी लिखने को स्वीकार करता है। इस उदाहरण में आप मौखिक भाषा का लेखन पर प्रभाव भी देख सकते हैं।

सरकारी स्कूल में बच्चे मानक हिन्दी बोलने के आग्रह की वजह से अपनी भाषा के प्रति हीन भावना महसूस करते हैं। *नई शिक्षा नीति 2020* में भी मात्र भाषा शिक्षण की बात की गई है। अन्त में, हमें यह ध्यान रखना होगा कि हम किस उद्‌देश्य के लिए शिक्षा दे रहे हैं।

आखिर में, मैं 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण-राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र' से एक महत्त्वपूर्ण विचार से अपनी बात ख़त्म करूँगी कि...

... यदि हम चाहते हैं कि ऐसा जनतंत्र पनपे जिसमें सभी की भागीदारी सम्भव हो सके
तो हमें प्रत्येक बच्चे को उसकी भाषा में सुनना होगा...

मीनू पालीवाल ने अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में 6 वर्ष काम किया है। आप फ़ेलोशिप प्रोग्राम के ज़रिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ीं। इससे पहले उन्होंने 6 वर्ष आईसीआईसीआई बैंक में काम किया। वे अपने मन में आने वाले सवालों की तलाश में शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। उन्हें प्राथमिक कक्षाओं में काम करना अच्छा लगता है।

सम्पर्क : paliwal.meenu@gmail.com

सामाजिक विज्ञान में सीखना–सिखाना

प्रिया जायसवाल

सामाजिक विज्ञान, ख़ासकर इतिहास में तथ्यों की पड़ताल कैसे करें? लेखिका कहती हैं कि लम्बे समय में हुए बदलाव को जानने का एक तरीक़ा अवलोकन हो सकता है। उस समय मौजूद लोगों से बातचीत कर तथ्यों को इकट्ठा करना इसका एक अन्य तरीक़ा हो सकता है। इस तरह के अवलोकन और बातचीत के लिए क्या करना है, किस तरह के प्रश्न पूछने हैं, यह तैयारी ज़रूरी है। प्राप्त तथ्यों की जाँच भी इसका ज़रूरी पहलू है। इसके लिए हमें देखना होगा कि एकत्र किया गया डेटा सही है या नहीं, या किस हद तक सही है, और इसके लिए फिर अन्य स्रोतों व सन्दर्भों की मदद भी लेनी पड़ सकती है। -सं.

पृष्ठभूमि

तथ्यों का एकत्रीकरण, अवलोकन, विश्लेषण एवं दस्तावेज़ीकरण, सामाजिक विज्ञान एवं पर्यावरण अध्ययन विषय के महत्त्वपूर्ण शिक्षण अभ्यास हैं। इन अभ्यासों में यह गुंजाइश है कि बच्चे और शिक्षक, दोनों साथ मिलकर विभिन्न तरीक़ों के माध्यम से सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के भागीदार बन सकते हैं। इनमें पाठ्यपुस्तकों के इतर भी बच्चों के पास सीखने-समझने के अवसर होते हैं, जहाँ वे स्वयं से अपने ज्ञान का सृजन कर सकते हैं और उसे विस्तार दे सकते हैं। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में भी यह अपेक्षा की गई है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* इस बात की अनुशंसा करती है कि बच्चों के समग्र विकास में अनुभवजनित शिक्षण की बहुत महत्ता है। नीति इस बात की भी पैरवी करती है कि बच्चों का सीखना आनन्ददायी हो और सीखने-सिखाने की प्रक्रियाएँ उन्हें इंगेज करने वाली हों। इनमें बच्चों के पास खोजने के अवसर हों। स्कूल विज़िट के दौरान कक्षा अवलोकनों एवं विभिन्न मंचों पर शिक्षकों के साथ बातचीत करने पर हमारी यह समझ बनी कि कई बार बच्चों को इस विषय की अवधारणाएँ जटिल और अमूर्त प्रतीत होती हैं, जिससे विषय के प्रति नीरसता बढ़ने लगती है। साथ ही सामाजिक विज्ञान विषय की मूल दक्षताओं, जैसे– पाठ्यसामग्री का विश्लेषण, समय और स्थान के सम्बन्ध में सामाजिक घटनाओं की व्याख्या करने की क्षमता, समालोचनात्मक चिन्तन, विविधता का





पाएँ कि प्राप्त जानकारी सही है या नहीं, और सही है तो किस हद तक।

तैयारी एवं तथ्यों को जुटाना

तैयारी के रूप में पहले शिक्षकों के बीच सन्दर्भ रखा गया, जिसमें सामाजिक विज्ञान शिक्षण की प्रक्रियाओं व कौशलों पर चर्चा की गई। इस चर्चा के साथ ही विषयवस्तु के अनुसार शिक्षकों के समूह बनाए गए। उदाहरण के लिए, एक समूह को देहरादून के धार्मिक स्थल झण्डा साहिब की जानकारी जुटाने के लिए बाज़ार का अवलोकन एवं वहाँ लम्बे समय से रह रहे व्यक्तियों से बातचीत करने की और दूसरे समूह को झण्डा साहिब के पण्डितजी के साक्षात्कार की ज़िम्मेदारी दी गई। इस प्रक्रिया हेतु सर्वप्रथम दोनों ही समूहों ने बातचीत एवं साक्षात्कार हेतु कुछ प्रश्न तैयार किए। बाज़ार में लोगों के साथ बातचीत के प्रश्न कुछ इस प्रकार थे :

आपकी दुकान कब से है; तब से आज तक आपकी दुकान में सामान, संरचना, मानवीय संसाधन आदि के लिहाज़ से किस-किस तरह के बदलाव आए हैं; विशेषकर स्थानीय मेले के समय आपकी आर्थिक आमदनी पर क्या प्रभाव पड़ता है; आदि।

इसी तरह पण्डितजी के साथ बातचीत के भी कुछ सवाल इस प्रकार तय किए गए : शुरुआती दौर से लेकर अभी तक यहाँ की व्यवस्थाओं में किस तरह का परिवर्तन आया है; चार कोनों में बने चार मन्दिरों के पीछे का क्या इतिहास है; आदि।

पलटन बाज़ार का इतिहास जानने हेतु भी अलग-अलग समूह बनाए गए। एक अन्य समूह नगर निगम से जानकारी जुटाने के लिए भी था। इस तरह शिक्षकों ने विषयानुसार स्वयं से प्रश्नावली तैयार कर अपने-अपने समूहों में

सम्मान एवं संवेदनशीलता, आदि पर शिक्षकों के साथ काम करने की बेहद ज़रूरत है।

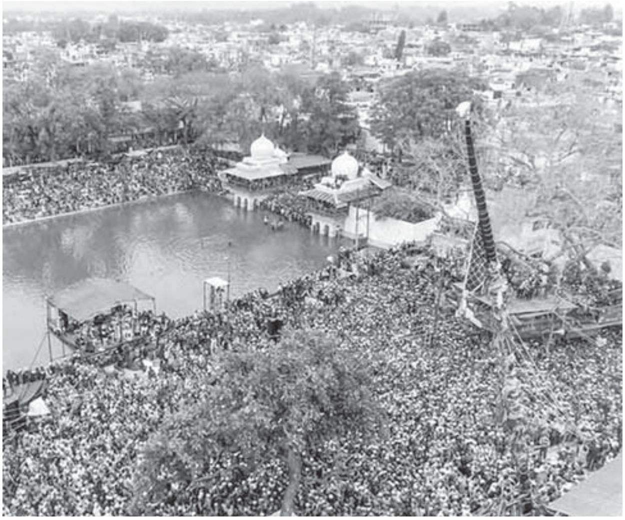
इसी सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए, शिक्षकों के लिए अनुभवजनित शिक्षण पर काम करने की योजना बनाई गई। इसमें उन्हें किसी स्थान विशेष के बारे में, अवलोकन के माध्यम से, आसपास के लोगों से बातचीत करके अपनी समझ को और विस्तार देना था। लक्ष्य यह था कि शिक्षकों के साथ यह चर्चा, उन्हें अपनी कक्षाओं में इस विषय की प्रकृति पर बेहतर समझ बनाते हुए बच्चों के साथ सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं को ठीक से नियोजित करने में मदद करेगी। साथ ही यह गतिविधि, पाठ्यपुस्तकों की सामग्री का विश्लेषण करने में शिक्षकों के लिए उपयोगी होगी। रविवार के स्वैच्छिक सत्रों और ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन कार्यशालाओं में इसे एक महत्त्वपूर्ण घटक बनाया गया। इस पूरी प्रक्रिया में उद्देश्य यह भी था कि शिक्षक किसी भी जानकारी या तथ्य को एकत्रित करने की प्रक्रिया, तथ्य जुटाने में स्थानीय लोगों की भूमिका और इस सबके विश्लेषण से गुज़र सकें। इस तरह देहरादून शहर के अलग-अलग स्थानों, जैसे– पलटन बाज़ार, क्लॉक टावर, नगर निगम, आदि का शैक्षिक भ्रमण शिक्षकों द्वारा किया गया। अलग-अलग जगहों व व्यक्तियों से डेटा एकत्र करने का उद्देश्य यह था कि हम एकत्र किए गए डेटा की सत्यता की जाँच कर पाएँ, और देख

स्थानीय लोगों से बातचीत करके जानकारी जुटाई। परिस्थिति के मुताबिक़ और बातचीत में निरन्तरता बनाए रखने के लिए शिक्षक प्रश्नों में कमी-बढ़ोतरी भी करते रहे। विभिन्न स्थानों में अलग-अलग व्यक्तियों से जानकारी एवं तथ्य जुटाने की इस प्रक्रिया के पहले तैयारी के रूप में उस स्थान पर जाकर वहाँ का अवलोकन किया गया और जिन लोगों से बातचीत करनी थी, उनकी सहमति ली गई, ताकि जिस दिन यह देखने जाने की योजना बनाई गई थी उस दिन यह सहज तरीक़े से लागू की जा सके।

शिक्षकों द्वारा एकत्रित जानकारी को पुष्ट करने की प्रक्रिया में सभी समूहों द्वारा प्राप्त जानकारी को बड़े समूह में साझा किया गया। बड़े समूह में जानकारी साझा करने से पहले उस समूह ने अपने समूह में प्राप्त जानकारी को व्यवस्थित करते हुए दर्ज किया और इसकी एक संक्षिप्त रिपोर्ट बनाई। इस पूरी प्रक्रिया में शिक्षकों के अनुभव काफ़ी रोचक थे। उदाहरण के लिए, प्राप्त जानकारियों में कुछ ऐसी थीं, जिनमें सभी समूहों द्वारा प्राप्त किए गए तथ्यों में समानता थी, पर कहीं-कहीं भ्रम की स्थिति भी बनी। ऐसे में यह चर्चा की गई कि इस जानकारी को और टटोलने की कोशिश की जाएगी। बहुत-सी ऐसी बातें थीं जो सभी के लिए रोचक थीं। जैसे– मोची गली, जिसका नाम अब श्री गुरु राम राय मार्केट हो गया है, क्षेत्र का व्यस्ततम बाज़ार है। वहाँ पहले एकमात्र दुकान जूतों के व्यवसायी श्री गंगा राम की थी। फ़िलहाल अब उसी स्थान पर होलसेल प्लास्टिक के सामान की दुकान है। 'मोची गली' नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि यहाँ पहले ज़्यादातर मोची ही रहा करते थे। इसी तरह 'घोसी गली' को लेकर यह जानकारी मिली कि यहाँ ग्वाले रहा करते थे। हमें मालूम हुआ कि लम्बे अन्तराल में इस जगह पर बहुत-से परिवर्तन हुए और ज़रूरतों के हिसाब से नई दुकानें खुलती गईं।

इस प्रक्रिया में यह भी समझने में मदद मिली कि चूँकि लोगों के विचार उनके अनुभवों से प्रभावित होते हैं, इसलिए उनका दृष्टिकोण उनके द्वारा दी गई जानकारी को प्रभावित करता है। जैसे– झण्डा साहिब मेले के समय बाज़ार में लोगों की आर्थिक आमदनी में कोई फ़ायदा होता है या पहले और अब तक झण्डा साहिब मेले में किस तरह के परिवर्तन आए हैं, इसको लेकर अलग-अलग लोगों के जवाब अलग-अलग थे। बड़े व्यापारियों का कहना था कि कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ा, क्योंकि उनकी दुकानों से संगतें अभी भी काफ़ी सामान ख़रीदती हैं। दूसरी तरफ़, एक चाय की दुकान के मालिक का कहना था कि पहले जब संगतें आती थीं, तब लोग बाज़ार में घूमते थे, चीज़ें ख़रीदते थे, बाहर ही खाना-पीना होता था, और कई दिनों तक लंगर चलते थे, पर अब संगतें अन्दर दरबार में ही रहती हैं, वहीं भण्डारा लग जाता है। इसलिए आसपास बाज़ारों व दुकानों में कम ही लोग आते हैं तो बिक्री कम होती है। कपड़ों की दुकान के व्यापारी ने बताया कि मेले के दौरान आय में वृद्धि के स्थान पर उनकी आय कम हो जाती है क्योंकि जो लोग मेले में आते हैं वे कपड़े लेना पसन्द नहीं करते और भीड़ के कारण उन्हें अपनी दुकान को बन्द रखना पड़ता है। इस





3-4 हज़ार लोग आते थे और कुम्भ के वर्षों में यह संख्या 10 हज़ार तक पहुँच जाती थी। यह भी ज्ञात हुआ कि झण्डा साहिब मेला सामान्यतः गुरु राम राय के जन्मदिन, होली के पाँचवें दिन, पर लगता है। यहाँ पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड से श्रद्धालु आते हैं।

शिक्षकों की प्रतिक्रियाएँ

सभी शिक्षक इस पूरी प्रक्रिया में सहभागी रहे और उन्हें यह गतिविधि काफ़ी अच्छी लगी। इस पूरी प्रक्रिया में वे अपने स्थानीय इतिहास से परिचय बढ़ा सके। वे इतिहास को बनाने और उसे प्रभावित करने वाले कारकों पर चर्चा कर सके और समय के साथ बाज़ार में आए बदलावों का अवलोकन करते हुए इसके विश्लेषण तक पहुँचे। शिक्षकों ने समूह में बातचीत करते हुए अपने समाज की समझ को एक प्रक्रिया के रूप में देखा। वे देख सके कि समाज में कई क़िस्म की अन्त:क्रियाएँ चलती रहती हैं और इसमें आमतौर पर प्रचलित अवधारणाओं के साथ ही उनसे अलग और कई बार उनकी विरोधी धारणाएँ भी दिखाई देती हैं। इसलिए ज़रूरत इन अवधारणाओं को समझने और उनपर विचार करने की है। कक्षा-कक्ष के भीतर और बाहर बच्चों के साथ इन अनुभवों के आलोक में चर्चा की जा सकती है और इन्हीं चर्चाओं से सामग्री के विश्लेषण के नए रास्ते निकल सकते हैं। इसी प्रक्रिया में किसी समय व स्थान में होने वाली सामाजिक परिघटनाओं की व्याख्या करने की क्षमता एवं समालोचनात्मक चिन्तन की तरफ़ बढ़ा जा सकता है और विविधता का सम्मान व संवेदनशीलता जैसे मूल्यों को पुष्ट किया जा सकता है।

बच्चों के साथ किया जाने वाला काम

इस तरह की प्रक्रिया स्कूल में बच्चों के साथ की जा सकती है। शिक्षक पहले किसी स्थान का चयन करें। उस स्थान के बारे में

बातचीत से पता चलता है कि सामाजिक सच का एक ही पहलू नहीं होता। अगर एक ही पक्ष की बात को दर्ज किया जाए तो सच की पूरी तस्वीर नहीं बन सकेगी।

इस तरह की बातचीत में लोगों की धार्मिक आस्थाएँ भी जुड़ी होती हैं, जिन्हें संवेदनशीलता के साथ अन्य तथ्यों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए टटोलने की ज़रूरत होती है। लोगों की आस्था, दुकानों में आए बदलाव, आदि के साथ इस जगह की आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारियाँ बातचीत में उभरकर आईं। जैसे, इस जगह पर पहले भी बाहर खाना खाने का प्रचलन बहुत था, इसलिए खाने की दुकानें लगातार रहीं। यह भी पता लगा कि पहले पहाड़ी राजमा, पहाड़ी दालें जैसे स्थानीय अनाज काफ़ी आते थे, पर अब बाज़ार में इनकी पहुँच काफ़ी कम हो गई है। बातचीत में जानकारी मिली कि इस जगह को स्थापित करने वाले गुरु राम राय किरतपुर से चलकर 1676 में केदारखंड (देहरादून का पुराना नाम) पहुँचे और यहाँ अपना मठ बनाया। यह भी पता लगा कि गुरु राम राय को औरंगज़ेब के कहने पर टिहरी के राजा ने कई गाँव दान में दिए थे। इसका उल्लेख जी आर सी विलियम्स की किताब *मेमोरियल्स ऑफ़ देहरादून* में मिलता है। इस किताब के अनुसार, 1874 में इस मेले में

कुछ प्रश्न तैयार करें। जैसे– पहले वहाँ क्या था, या किसी गाँव या बस्ती में क्या बदलाव आए, आदि। बच्चों को इस विषय पर प्रोजेक्ट कार्य दिए जाएँ। उनके समूह बनाकर उन्हें प्रश्न बनाने को प्रेरित करें कि वे गाँव या किसी स्थान विशेष के बारे में क्या-क्या जानना चाहते हैं और यह जानकारी उन्हें गाँव के किन व्यक्तियों से मिलेगी। प्रश्न बनाने में शिक्षक बच्चों की मदद कर सकते हैं और उन्हें अलग-अलग आयामों पर सोचने में सहायता कर सकते हैं। बच्चे समूह में भी अपने लिए प्रश्नों का निर्माण कर सकते हैं। इसके अलावा, शिक्षक पाठ्यपुस्तकों से इस तरह की विषयवस्तु का चयन कर सकते हैं जिसमें आसपास के स्थानों के भ्रमण और स्थानीय लोगों से बातचीत के मौक़े हों। इस तरह विद्यार्थी बाहरी दुनिया से पाठ्यपुस्तक का जुड़ाव समझ पाएँगे। उदाहरण के लिए, 'सरकार' की अवधारणा में 'स्थानीय शासन' को समझने के लिए बच्चों को अपने गाँव की पंचायत, ग्राम सभा, नगरपालिका या नगर निगम का भ्रमण करवाया जा सकता है, और वहाँ की कार्यप्रणाली को बेहतर समझने के लिए सन्दर्भित व्यक्तियों से बातचीत एवं साक्षात्कार करवाकर जानकारी एकत्रित करने को कहा जा सकता है। यह भी ज़रूरी होगा कि शिक्षक इस तरह की गतिविधि की पूर्व तैयारी अपने स्तर से कर लें। जिस स्थान पर विज़िट करनी है, जिन लोगों से बातचीत करनी है, उनसे पहले समय ले लिया जाए ताकि नियत दिन किसी तरह की असुविधा न हो। इस प्रकार चयनित मुद्दे / अवधारणा की प्रकृति के अनुसार शिक्षक बच्चों के लिए अनुभवजनित शिक्षण की योजनाएँ बना सकते हैं और बच्चों को अवलोकन करने, किसी विषय पर आसपास के लोगों से पूछताछ कर ख़ुद से जानकारी एकत्रित करने और उस जानकारी का विश्लेषण करने के मौक़े दे सकते हैं। जब बच्चे अपनी जानकारी एकत्रित करके ले आएँ, तब उन्हें उस जानकारी को व्यवस्थित करने के लिए कहा जाए। बड़े समूह में उस



जानकारी का प्रस्तुतिकरण हो और बच्चों के पास एक दूसरे से सवाल-जवाब करने के मौक़े हों। इस तरह बच्चों में जानकारी को व्यवस्थित कर विभिन्न तरीक़ों से दर्ज कर पाने के अवसर होंगे। इससे उनमें विश्लेषण करने, तर्क करने एवं अभिव्यक्ति की क्षमताओं का विकास होगा।

इस प्रक्रिया के द्वारा सामाजिक विज्ञान एवं पर्यावरण अध्ययन विषय की सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं को नए आयाम मिलेंगे। बच्चों में स्वयं से जानकारी को एकत्रित कर उसका विश्लेषण करने की क्षमता का विकास होगा। साथ ही, यह विषय नीरस और उबाऊ प्रकृति का है, ऐसी पूर्व धारणाओं को भी दूर करने के अवसर बनेंगे।

प्रिया जायसवाल 12 वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में कार्यरत हैं। विभिन्न सेवापूर्व एवं सेवाकालीन शिक्षक क्षमता संवर्धन कार्यक्रमों से जुड़ाव है। वर्तमान में, वे देहरादून में परिवेशीय अध्ययन एवं सामाजिक विज्ञान की रिसोर्स पर्सन हैं।

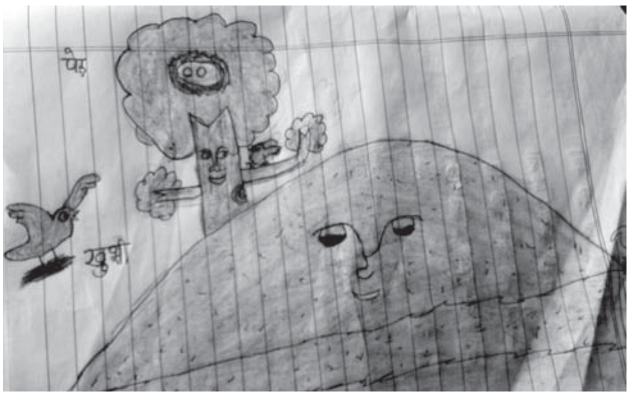
सम्पर्क : priya.jaiswal@azimpremjifoundation.org

लिखना सीखने की मज़ेदारी

सुनीता

बच्चों को लिखना सिखाने के लिए कई तरीक़े अपनाए जाते हैं। इस लेख में बच्चों की भागीदारी और एक-दूसरे की मदद से लिखना सिखाने के लिए अपनाए गए तरीक़ों के अनुभव शामिल हैं। इन तरीक़ों में बच्चों की मज़ेदारी और रुचियों का ख़ास ध्यान रखा गया। बच्चों द्वारा चित्र बनाना और उसके बारे में एक और फिर एक से ज़्यादा वाक्य लिखना; किसी चीज़ के बारे में चाही गई जानकारी मिलकर जुटाना, उसको लिखना; लिखे हुए को पढ़ना, उसके बारे में बताना; बनाए गए चित्रों में रंग भरना; कविता-कहानियाँ सुनना व उनके बारे में लिखना। आगे चलकर उन विषयों पर लिखना जिनके बारे में बच्चे जानते हैं। इस प्रक्रिया में बच्चों के सीखने के स्तरवार समूह बनाने व इनकी महत्ता पर भी बात की गई है। -सं.

लिखना सीखने की शुरुआत को लेकर अलग-अलग तरह की बातें आपने सुनी होंगी। कुछ लोगों का मानना है कि लिखना सीखना ईंट-दर-ईंट रखने जैसी प्रक्रिया है। पहले बच्चे आड़ी-तिरछी लाइनें बनाना सीखेंगे, फिर अक्षर की बनावट, और तब कहीं जाकर लिखेंगे। कुछ का मानना है कि ब्लैकबोर्ड से बच्चे उतारना सीख जाएँ तो उनको लिखना आ जाएगा। कुछ कहते हैं कि बच्चों को लिखने से पहले चित्र बनाना, आदि जैसे अन्य अभ्यास के मौक़े देंगे तो बच्चे लिखना सीख जाएँगे। लिखने के बहुत-से तरीक़े हो सकते हैं और हमें यह भी मानना होगा कि हर बच्चा अपने तरीक़े से लिखना सीखेगा। लेकिन तरीक़ा रुचिकर होगा तभी बच्चे लिखने से जुड़ेंगे। लिखना सीखना महत्त्वपूर्ण और श्रमसाध्य भी है, इसीलिए लिखना सीखना और सिखाना बच्चों और शिक्षकों दोनों के लिए अकसर चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। बच्चे लिखने से जुड़ें, इसके लिए उन्हें ऐसे टास्क देने होंगे जो वे करना चाहें। मैंने पाया कि लिखने की प्रक्रिया को कुछ ऐसे मज़ेदार तरीक़ों से किया जाए जिनमें बच्चों की रुचियों को शामिल कर लिया जाए तो यह लेखन अर्थपूर्ण प्रक्रिया बन जाती है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में भी इस बात की पैरवी की गई है कि बच्चों को लिखना सिखाने के लिए अलग-अलग नवाचार अपनाए जाएँ जिनमें बच्चों का जुड़ाव हो।







मैंने कक्षा 1 और 2 के 30 बच्चों के साथ एक वर्ष तक उनके आरम्भिक लेखन पर काम किया। शुरुआत ब्लैकबोर्ड पर चित्र बनाकर उस चित्र के नाम और उसपर एक-एक वाक्य लिखने के साथ हुई। यह वाक्य कभी मैं, तो कभी बच्चे बताते थे और तब बच्चों को इन वाक्यों को अपनी कॉपी में लिखना होता था। लिखने की शुरुआत में बच्चों को चित्र बनाने में मुश्किल होती थी और उन्हें स्वयं के बनाए चित्र पसन्द भी नहीं आते थे। इसके लिए समय-समय पर बच्चों को प्रोत्साहित करते रहना पड़ा कि आपने अच्छा चित्र बनाया है, और बनाते-बनाते चित्र और बेहतर होंगे, आदि। धीरे-धीरे बच्चों को ख़ुद से चित्र बनाकर वाक्य लिखने में मज़ा आने लगा। वे यह भी समझने लगे कि हम चित्रों के बारे में जो बात बोलते हैं, वही बात लिखी और पढ़ी भी जा रही है। हमने ऐसे ही कुछ नहीं लिखा है, बल्कि जो बात लिखी है उसका कोई मतलब भी है। मसलन, घर पर हम रहते हैं, नल से पानी भरते हैं, आदि जैसे वाक्य।

शुरुआती कुछ दिनों तक हम रोज़ कुछ नए चित्र बनाते और हर एक चित्र पर केवल एक वाक्य ही लिखते, क्योंकि शब्दों और अक्षरों को पहचानने और पढ़ने का काम भी साथ-साथ चल रहा था। जैसे-जैसे बच्चे कुछ शब्दों को पढ़ने लगे तब हम किसी एक ही चित्र या विषय पर एक से अधिक वाक्य बनाने की तरफ़ बढ़े। हमने यह चिन्ता नहीं की कि बच्चे अभी सारे अक्षरों को पहचानते ही नहीं हैं। इस पूरी प्रक्रिया में फ़ोकस गाइडेड लेखन और स्वतंत्र लेखन को साथ-साथ ही देखा गया।

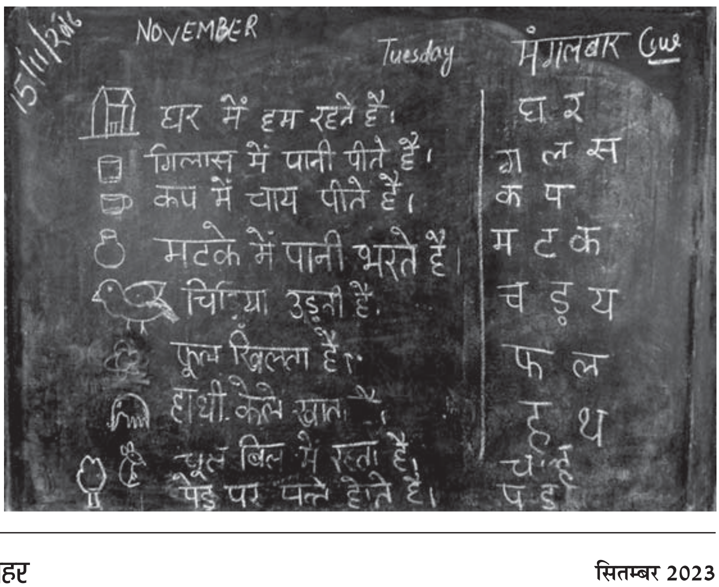
यहाँ एक बात मैंने महसूस की कि मुझे बच्चों को कभी अलग से मात्राएँ नहीं सिखानी पड़ीं। बस कभी-कभी लिखते वक़्त कुछ मात्राएँ बतानी होती थीं कि किस शब्द में कौन-सी मात्रा आएगी और उसे लिखते व पढ़ते कैसे हैं। धीरे-धीरे यह देखने में आया कि बच्चे अपने लिखे वाक्यों को बख़ूबी पढ़ने लगे और पढ़ने-लिखने में उन्हें मज़ा भी आने लगा। इस पूरी प्रक्रिया में यह बात भी उभरकर आई कि एक समय के बाद कक्षा में पढ़ने-लिखने के काम में काफ़ी विविधता आ गई थी। कुछ बच्चे वाक्यों को पढ़ते-लिखते कब बाल साहित्य की किताबें और कक्षा में लगी प्रिंट सामग्री पढ़ने लगे, यह मुझे ख़ुद भी पता नहीं चला।

कुछ समय बाद बच्चों के पढ़ने-लिखने की गति को देखते हुए मैंने समूह बनाकर काम करना शुरू किया। चूँकि कक्षा 1 और 2 के लगभग 30 बच्चे थे तो यह तय हुआ कि हम 4



समूह बनाते हैं। प्रत्येक समूह में कुछ ऐसे बच्चे हों जिन्हें पढ़ना-लिखना आ गया हो, ताकि वे, पढ़ने-लिखने में एक दूसरे की मदद कर सकें। यह काम भी कुछ दिनों तक लगातार चलता रहा और अब भी बच्चे पढ़ने-लिखने में एक दूसरे की मदद करते हैं।

अगले क्रम में बच्चों को समूह में ऐसे कुछ प्रश्न देकर जानकारी लिखने का काम दिया गया जिनके बारे में वे ख़ुद सोचकर लिख सकते थे। मसलन, पानी हमें कहाँ से मिलता है, पानी से हम क्या-क्या करते हैं, आदि।



बच्चों को यह बताया गया कि उन्हें अपनी कॉपी में एक दूसरे की मदद से जानकारी इकट्ठी करके लिखना है। इस प्रक्रिया के दौरान मैंने देखा कि बच्चों ने लिखने में भी एक दूसरे की मदद की। यहाँ यह भी तय किया गया था कि वे एक दूसरे को शब्द में आई ध्वनियों को भी एक-एक कर बताएँ कि शब्द कैसे लिखा जाएगा। बच्चों ने काफ़ी जानकारी एकत्रित कर ली थी। उन्होंने पूरी सूची बनाई थी कि पानी कहाँ से मिलता है और पानी से हम क्या-क्या करते हैं।

बच्चों से इसपर बातचीत करते हुए सभी बिन्दुओं को ब्लैकबोर्ड पर लिखा गया ताकि अगर किसी ने कोई बात छोड़ दी हो तो वह भी लिख ले। चूँकि बच्चों के पास पानी के बारे में पर्याप्त जानकारी और शब्द भण्डार था, इसलिए बच्चों ने यह काम ख़ुशी-ख़ुशी किया।

इस प्रक्रिया की बजाय अगर उनसे यह कहा जाता कि जल की उपयोगिता के बारे में पाँच वाक्य लिखो तो शायद यह काम उन्हें बोझिल लगता!

इस तरह लिखने का काम निरन्तर आगे बढ़ता रहा। किस चित्र पर वाक्य बनाएँगे, यह बातचीत लगभग रोज़ ही बच्चों के साथ होती थी। हम सब मिलकर तय करते थे कि ब्लैकबोर्ड पर किसका चित्र बनेगा। धीरे-धीरे इन चित्रों के बारे में लिखे जाने वाले वाक्यों की संख्या को भी हमने बढ़ा दिया था। कभी-कभी बच्चे



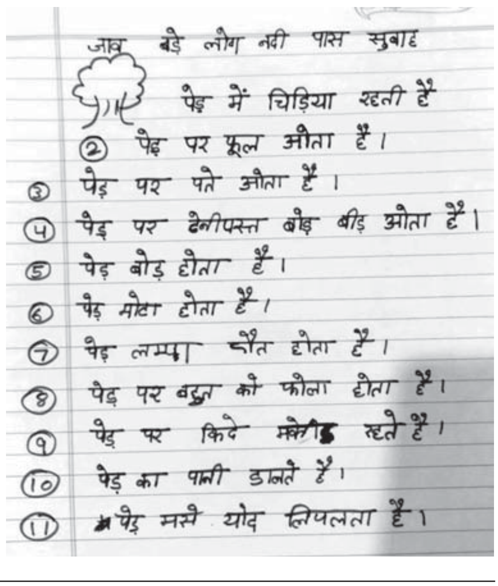
चित्र का विवरण भी देते कि कैसा चित्र बनाना है। वे बताते जाते और मैं वैसा चित्र ब्लैकबोर्ड पर बना दिया करती। पर अब चित्र के बारे में वाक्य बच्चों को स्वयं ही बनाना था, और वाक्य भी एक से ज़्यादा बनाने थे। वाक्यों को लिखने के बाद बारी-बारी से सबको इन्हें पढ़ना भी था, और बच्चे इन्हें पढ़ भी रहे थे। पढ़ने के दौरान किसी को भी समस्या नहीं हुई क्योंकि जो भी वाक्य चित्रों के साथ थे, वे बच्चों ने ही बनाए थे।

इस पूरी प्रक्रिया में कई चीज़ें हो रही थीं। बच्चे अपने ज़ेहन में आया वाक्य बताते थे। वे जब वाक्य बताते, दूसरे बच्चे उन वाक्यों को ध्यान से सुन रहे होते थे। वे देख रहे होते थे कि मैं क्या लिख रही हूँ। मैं जल्दी-जल्दी नहीं लिखती थी, और जो भी लिखती, उसे लिखते समय बोलती भी जाती थी। इससे शायद बच्चों को कुछ मदद हुई हो! वे अनुमान लगाकर भी पढ़ने की कोशिश करते। जिन बच्चों को पढ़ना नहीं आता था वे ब्लैकबोर्ड के पास आने से हिचकते थे, पर जब उन्होंने पढ़ने की कोशिश की और कुछ पढ़ पाए तो उनका उत्साह बढ़ा। उनमें आत्मविश्वास आया कि वे भी पढ़ सकते हैं। इस तरह पढ़ने के बाद वाक्यों और चित्रों को कॉपी पर बनाना था। वे कुछ अन्य चित्र बना रहे थे और वाक्य भी लिख रहे थे जिससे उनके लिखने का काम भी लगातार चलता रहा।

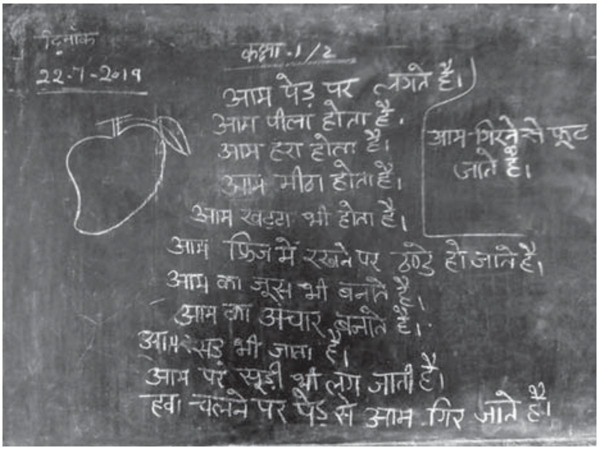
जैसा कि मैंने शुरुआत में बताया था कि मेरे पास कक्षा 1 से 4 तक के बच्चे थे। मैं कुछ काम बच्चों के स्तर को ध्यान में रखते हुए भी कर रही थी। मसलन, कक्षा 1 के बच्चे, जो बेहद शुरुआती स्तर पर थे, केवल चित्रों के नाम ही लिखते थे। साथ ही, उनके साथ चित्रों से सम्बन्धित शब्दों में आए अक्षरों को अलग करके लिखने का काम भी किया, ताकि बच्चों को अक्षर की पहचान भी हो जाए। जो शब्द बच्चे ग़लत लिख लेते थे, उनको ठीक से लिखकर भी दिखाया गया।

अगले चरण में मैंने प्रक्रिया को उलट दिया। मैंने सिर्फ़ वाक्य लिखे और बच्चों ने वाक्य से सम्बन्धित चित्र बनाए। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि कई बार बच्चे एक ही तरह के काम करते-करते ऊबने लगते हैं और फिर उनमें लिखने के प्रति नीरसता पैदा हो जाती है।

बच्चों के साथ चित्र बनाने, चित्रों पर वाक्य लिखने, चाही गई जानकारी को मिलकर एकत्र



करने की प्रक्रिया बेहद मज़ेदार रही। चित्र बनाने का फ़ायदा यह भी हुआ कि बच्चों की लिखावट भी बेहतर हो गई है। किसी बच्चे को कर्व लाइन, सीधी लाइन, आदि के बारे में कुछ बताने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। चित्र बनाने के बाद रंग भरने का काम (वैक्स कलर से) भी साथ-साथ चलता रहा। बच्चों की फ़ाइन मोटर ग्रिप (हाथ की माँसपेशियों की पकड़) लिखावट के लिए तैयार हो रही थी।



मुझे अच्छा लगता जब बच्चे पूछते थे कि मैम, अब हम किसके बारे में जानकारी जुटाएँ। मुझे यह भी अच्छा लगा कि कक्षा का हर बच्चा सक्रिय सहभागिता के साथ पढ़ने और लिखने में रुचि ले रहा था। यहाँ तक कि बच्चे स्वयं ही बताने लगे थे कि किसने कौन-सा वाक्य बोला है, किसकी बात दर्ज हुई और किसकी रह गई। दूसरा, यह भी देखने को मिला कि जिन्हें शब्द लिखना नहीं आ रहा था वे चित्र बनाने की कोशिश करने लगे थे, और जिन्हें वाक्य लिखने में परेशानी हो रही थी, वे उन चित्रों के नाम लिखने लगे थे। काम के दौरान बच्चे एक दूसरे का सहयोग करने में कोई कमी नहीं छोड़ते थे, चाहे किसी की चित्र बनाने में मदद करना हो या रंगों को एक दूसरे से साझा करना। इस काम के दौरान कक्षा में बच्चों से यह बातचीत भी की गई कि चित्रों को कितने बड़े आकार में बनाया जाए ताकि लिखने के लिए भी ठीक-ठाक जगह मिल जाए। धीरे-धीरे बच्चे स्वयं लिखने के बाद अपनी कॉपी से पढ़ने की कोशिश करने लगे।

आगे यह काम कविता-कहानियों के साथ जुड़ता गया। यहाँ भी बच्चे कविता-कहानियों का आनन्द लेने के बाद लिखने में यही प्रक्रिया अपनाते गए। यह भी देखने को मिला कि जो बच्चे ज़्यादा अनुपस्थित रहते और कक्षा में भी ध्यान नहीं देते थे, उन्होंने भी कक्षा में शब्द लिखने में रुचि दिखाई। लिखने के बाद अलग-अलग समूह बनाकर पढ़ने की गतिविधियाँ की गईं। जिन बच्चों ने वाक्य लिखे थे उनका एक समूह, और जिन्होंने शब्द लिखे थे उनका एक अलग समूह बनाया। सभी ने अपनी-अपनी कॉपी से स्वयं पढ़ा। जिन बच्चों को पढ़ना नहीं आ रहा था, वे भी अनुमान से सही पढ़ रहे थे।

अगले चरण में सभी बच्चों को उनके स्तर के अनुसार कहानियों की किताबें दी गईं। बच्चों ने आधा घण्टा किताबों को पढ़ा और पढ़ी हुई कहानी को अपने शब्दों में लिखा। कहानियाँ पढ़ने के बाद चित्र भी बनाए। जो बच्चे अक्षर पहचान कर चुके थे, वे अक्षरों को जोड़कर शब्द भी लिखने का प्रयास कर रहे थे। बच्चों से यह भी कहा कि अपनी-अपनी कॉपी में शब्दों की ग़लतियों को ख़ुद से ठीक कर लें। इससे उनका आत्मविश्वास भी बढ़ा।

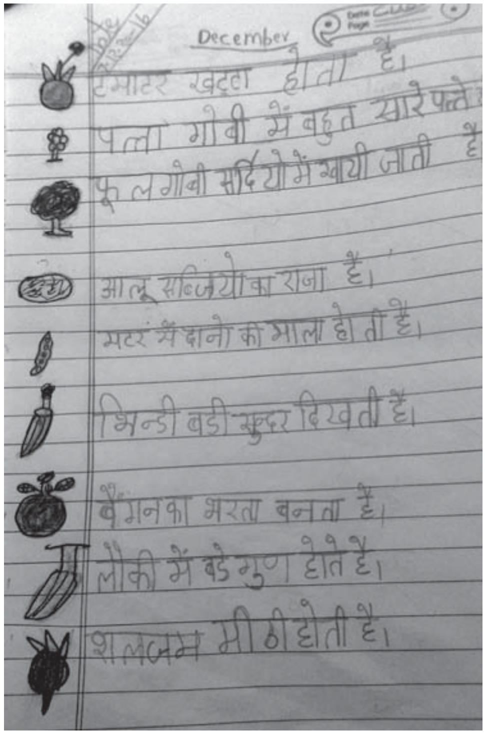
जब बच्चों के लिखने में प्रगति दिखने लगी तब लिखने की प्रक्रिया में कुछ और चीज़ें जोड़ी गईं, जैसे– अब हम 'पानी की कहानी', 'जंगल की जुबानी' आदि लिखेंगे। लिखने में थोड़ी विविधता और गहराई आए, इसके लिए बच्चों से इन बिन्दुओं पर चर्चा हुई कि पानी के बारे में हमें क्या-क्या पता है और जंगल के बारे में हमें कितनी जानकारी है। बातचीत के दौरान जब उनसे पूछा कि अगर पानी न होता तो क्या होता और जंगल न होता तो क्या होता, इसपर बच्चों

ने कुछ-कुछ बातें बताईं। जैसे– पानी नहीं होता तो पानी नहीं पी पाते, मुँह नहीं धो पाते, खाना नहीं बना पाते, कपड़े नहीं धो पाते, और नहाने को भी नहीं मिलता। एक बच्चे ने कहा कि हम पानी के बिना जी ही नहीं पाते। जंगल वाली बात पर बच्चों ने कहा कि अगर जंगल न होते तो पेड़, जानवर आदि भी नहीं होते। शुरुआत में बच्चे इस तरह के जवाब देते रहे, पर और बातचीत करने पर उनकी ओर से यह बात भी आई कि अगर जंगल न होते तो जंगली जानवर कहाँ रहते!

चूँकि अब हमें वाक्यों से आगे कहानी निर्माण की तरफ़ भी बढ़ना था, इसलिए उससे सम्बन्धित जानकारी को ब्लैकबोर्ड पर लिखा गया और बच्चे कहानी लिखने की तरफ़ आगे बढ़े।

इस पूरी प्रक्रिया से जो निष्कर्ष मैंने निकाले, वे ये रहे –

- बच्चों के साथ उनके लिखे पर लगातार बातचीत करना बहुत ज़रूरी है।
- मुझे यह भी समझ आया कि बच्चों को यह अच्छा लगता था कि उन्हें बताया न जाए बल्कि उनसे पूछा जाए कि उन्हें क्या करना है।
- इस प्रक्रिया में मुझे शिक्षक की योजना और उस योजना में बच्चों की शामिलियत का महत्त्व पता लगा। यह भी समझ बनी कि बच्चों के काम का लगातार अवलोकन करना चाहिए और उन्हें समझना चाहिए।
- बच्चों की रुचियों को जोड़े रखना भी पढ़ने-लिखने में काफ़ी मदद करता है। साथ ही इस प्रक्रिया से पता चला कि बच्चों को शुरुआत में पढ़ने और लिखने में चित्र काफ़ी मदद करते हैं और लिखने का सूत्रपात अक्षर, मात्राओं की शुरुआत के बग़ैर भी किया जा सकता है।



जैसा कि मैंने बताया, यह काम पूरे साल किया गया। इस लेख में उस काम की एक झलकभर ही है। मैंने यहाँ पढ़ने-लिखने की कुछ मुख्य गतिविधियों को दर्ज किया है, और यह भी कि हर गतिविधि एक लम्बे समय तक बच्चों के साथ की गई। बच्चों की प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए, उनसे उनके लेखन पर, यथा– नए शब्दों, शब्दों की वर्तनी, नए विचारों को जोड़ने और समूह में काम करने के बारे में भी बातचीत हुई। मुख्य फ़ोकस यही रहा कि बच्चे पढ़ने और लिखने की दिशा में कुछ आगे बढ़ें।

सुनीता दो दशक से भाषा शिक्षण के क्षेत्र में सक्रिय हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में उत्तराखंड के ऊधम सिंह नगर में भाषा स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

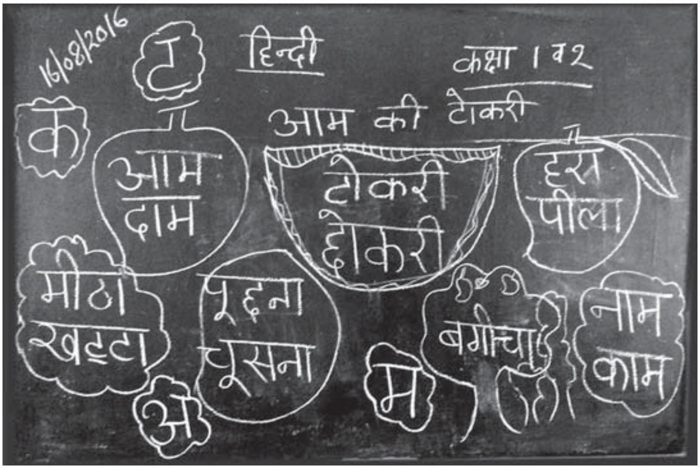
सम्पर्क : sunita1@azimpremjifoundation.org

पढ़ने–लिखने का आनन्द

हंसराज तंवर

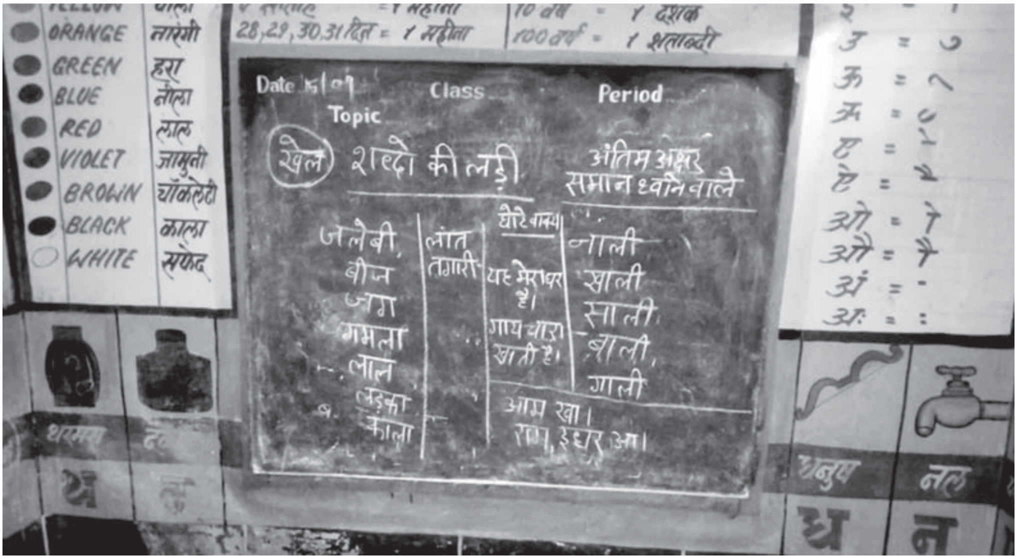
कक्षा 1 में बच्चों को लिखना सिखाने के अनुभव इस लेख में प्रस्तुत हैं। लेखक बताते हैं कि बच्चों को लिखना सिखाने की शुरुआत उन्होंने वर्णों से की। कुछ दिन इनपर काम करने के बाद भी जब बच्चे समझ नहीं पाए तब उन्होंने अपने काम के तरीक़े को बदला। उन्होंने बच्चों को ख़ूब चित्र बनाने, और चित्रों के बारे में बात करने के मौक़े दिए। उन चित्रों के नामों को लिखना बच्चों ने सीखा और ऐसे धीरे-धीरे वे न केवल वर्ण, बल्कि शब्द व छोटे वाक्य भी लिखने और पहचानने लगे। –सं.

मैं प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाने वाला शिक्षक हूँ। मेरे पास कक्षा 1 में, 5-6 वर्ष की आयु के 19 बच्चे हैं। इनमें 7 बालिकाएँ और 12 बालक हैं। मैं उनको हिन्दी भाषा पढ़ाता हूँ। बच्चों में मौखिक भाषा विकास हेतु मैं उनको रोज़ बालगीत, कहानी, कविता, आदि उनकी घर की भाषा में सुनाता हूँ और उनसे सुनने का प्रयास भी करता हूँ। शुरुआत में कुछ बच्चे ही कुछ सुना पाए, पर जब मैंने बालगीत, कविता, कहानी का क्रम कक्षा में लगातार बनाए रखा तो 2 माह बाद सभी बच्चे बालगीत सुनाने लगे। भले ही वे पूरा गीत नहीं सुना पाते, पर तीन-चार पंक्तियाँ बोलने लगे। मुकेश, सीमा, लाली, रामजीलाल व रमेश ने अच्छी तरह से हाव-भाव के साथ बालगीत सुनाना और बातचीत करना शुरू कर दिया। मुझे बच्चों को हिन्दी भाषा में मौखिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ लिखित अभिव्यक्ति हेतु वर्णों की पहचान व लिखने का अभ्यास भी करवाना था।



इसकी शुरुआत मैंने वर्णों को लिखवाने से की। इस शुरुआती शिक्षण में वर्णों की पहचान व उनकी आकृतियाँ बनवाने में मुझे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था।

मैंने यह पाया कि बच्चे लिखने में ख़ूब रुचि लेते थे, पर वर्णों को उलटा लिखना, आकृति को बहुत बड़ा बनाना, सही मोड़ नहीं करना, जैसी चुनौतियाँ मेरे सामने आ रही थीं। साथ ही बच्चों को वर्ण पहचान करवाना भी मेरे लिए चुनौती बन रही थी। हालाँकि मेरा ऐसा मानना था कि



इन वर्णों की आकृति बच्चे धीरे-धीरे (आगे की कक्षाओं में) सही कर ही लेंगे, पर वर्ण पहचान करवाना पढ़ने के लिए आवश्यक है। बच्चे कुछ अक्षरों का उच्चारण भी सही नहीं कर पा रहे थे। मसलन, 'द' और 'ध' में अन्तर न करना, 'स' को 'ह' बोलना, आदि। अक्षरों का क्रम बदलने पर बच्चे एकदम से नए शब्द को पहचानने में दिक़्क़त महसूस करते थे। इन चुनौतियों से मैं कक्षा शिक्षण के दौरान लगातार जूझ ही रहा था कि एक दिन मैंने सभी बच्चों को अपने मन से चित्र बनाने के लिए कहा। सभी बच्चों ने अलग-अलग चित्र बनाए। उन्होंने पेड़, चूहा, पतंग, तिरंगा झण्डा, झूला, बाल्टी, केला, बैगन, गिलास, फूल व आम के चित्र बनाए।

मैंने बच्चों से उन चित्रों पर बात करना शुरू किया। बच्चे बातचीत में रुचि ले रहे थे। मैंने उनसे बनाई गई चीज़ों के रंग, वे क्या काम आती हैं, उनकी ख़ासियत, आदि को लेकर बातें कीं।

कुछ बच्चों के चित्र स्पष्ट नहीं बने थे। लेकिन उन चित्रों पर भी हमने चर्चा की। मसलन, यह आपने क्या बनाया है? यह क्या काम आता है? आपने इसको कहाँ देखा है, आदि। मैंने जाना कि उनके द्वारा बनाई गई आड़ी-तिरछी दिखने वाली रेखाएँ, छोटे-बड़े-चपटे गोले, मुझे नहीं समझ आए, मैं उनके कोई मायने नहीं गढ़ पाया था, लेकिन बच्चे जानते थे कि उन्होंने क्या बनाया है। यही नहीं, वे सभी अपने बनाए चित्रों की व्याख्या भी कर पा रहे थे। बच्चों के लिए इन चित्रों में लोहे का चक्र, गाय की पूँछ, भैंस का सींग, दादी का चश्मा जैसी कई चीज़ें थीं। अपनी कुछ कक्षाओं में मैंने उनको अपनी इच्छा से और नए-नए चित्र बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। चित्रों को बनाने से उनकी हाथ और आँख की माँसपेशियों की कसरत होती ही थी, साथ ही हमें चर्चा के लिए भी कई विषय मिल जाते थे।

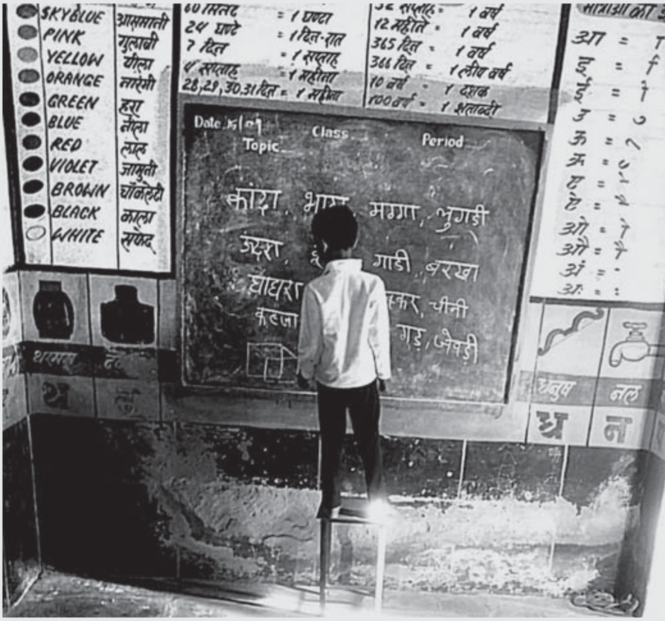
चित्रों पर चर्चा के दौरान कई सवाल-जवाब भी होते। जैसे– एक बार मैंने पूछा, "बताओ, केले का रंग कौन-सा होता है?" लगभग सभी बच्चों ने केले का रंग पीला बताया, पर एक बच्ची सीमा ने सफ़ेद बताया। मैंने उससे इसका कारण जानना चाहा तो वह बोली, "सर, पीला तो छिलका होता है, अन्दर से केला सफ़ेद ही होता है। छिलके का क्या! वह तो कच्चे केले में हरे रंग का होता है।" मैंने फिर बच्चों से पूछा, "अच्छा बताओ, दादी चश्मा क्यों लगाती हैं?" अधिकांश बच्चों ने कहा, "उन्हें दिखाई नहीं

देता इसलिए।" पर एक बालक रामजीलाल ने कहा, "नहीं, मेरी दादी तो पढ़ने के लिए चश्मा लगाती हैं। वैसे तो उन्हें ख़ूब दिखता है।" बच्चों से चित्रों पर चर्चा के बाद उन चित्रों के नाम लिखकर बच्चों से वर्ण / अक्षर की पहचान करवाने का काम किया। चूँकि बच्चे चित्र का नाम पहले से ही जानते थे, इसलिए उनको लिपि संकेत पहचानने में मदद मिली। इस तरह कार्य करने से बच्चों को अक्षरों की पहचान करने में कम समय लगा, ऐसा मुझे महसूस हुआ।

मैंने ऊपर लिखा भी है कि जब मैंने वर्णों पर सीधे ही शुरुआत की थी, तब बच्चे नहीं समझ पा रहे थे। चित्रों के बाद मैंने बच्चों से उनके परिवेश में उन्होंने जो चीज़ें देखी हैं, उनके नाम एक-एक करके बताने को कहा। बच्चे बहुत-सी चीज़ों के नाम जानते थे। उन्होंने अपनी भाषा में इनके नाम बताए। मसलन, कांदा (प्याज़), भाटा (पत्थर), उंदरा (चूहा), छाछ, दूध, गाय, मग्गा (जग), जेवड़ी (रस्सी), खाहली (मटकी), गुड़, शक्कर, चीनी, क़ब्ज़ा, घाघरा, लुगड़ी (ओढ़नी), गिलास, गाड़ी, कूँची (चाबी), ताला, नल, पानी, बरखा (बरसात), आदि। इन सभी नामों को मैं ब्लैकबोर्ड पर लिखता गया। सारे नाम लिखने के बाद बच्चों से पढ़वाया तो मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ कि एक-दो बच्चों को छोड़कर सभी ने ठीक-ठाक पढ़ लिया, जबकि अभी ये वर्णमाला के सारे अक्षरों / मात्राओं से परिचित नहीं थे। मैंने शब्दों का क्रम बदलकर एक बार और पढ़ने के लिए कहा। अबकी बार कुछ बच्चे ही पढ़ पाए।



मैंने समझ लिया कि लिपि चिह्नों की पहचान पर थोड़ा और काम करना मददगार होगा। इसलिए मैंने इन परिचित शब्दों से ही अक्षर व मात्राओं की पहचान करवाना शुरू किया। समान ध्वनि वाले परिचित शब्द जैसे– चाचा, मामा, दादा, पापा, काकी, नानी, दादी, अन्तिम अक्षर समान ध्वनि वाले जैसे– चल, कल, पल, हल, सर, पर, कर, मर, तब, अब, कब, आदि का मौखिक व लिखित अभ्यास भी बच्चों को ख़ूब करवाया। इसी क्रम में मैंने बच्चों से तुक वाले शब्द बनवाए। मसलन– ताली, जाली, वाली, नाली, ख़ाली, साली, बाली, गाली, आदि। बच्चों के साथ जो कविताएँ की थीं उनमें आए तुकबन्दी वाले शब्दों को भी बच्चों ने पहचाना और लिखा। बच्चों को शब्दों की लड़ी का खेल भी खिलवाया। जैसे– जलेबी, बीज, जग, गमला, लाल, लड़का, काला, लात, तगारी आदि। इस खेल में शब्दों के अन्तिम अक्षर से शुरू होने वाला नया शब्द बच्चे सोचकर बताते हैं, कभी-कभी मैं भी उनकी मदद करता हूँ। इस खेल में बच्चों को बहुत आनन्द आता है और मुझे भी सोचने-समझने के अवसर मिलते हैं। इन सब शैक्षणिक गतिविधियों से बच्चे बड़ी सहजता के साथ सीख रहे हैं। इन सब कार्यों के बाद मैंने चित्रों पर बच्चों से छोटे-छोटे वाक्य लिखवाना



शुरू किया। बच्चों ने शुरुआत में दो-दो शब्दों के छोटे-छोटे एक-दो वाक्य ही लिखे, पर बाद में वे तीन-चार शब्दों के वाक्य भी लिखने लगे। मसलन— आम खा, राम इधर आ, यह मेरा घर है, गाय चारा खाती है, आदि।

इस तरह के लिखित अभ्यास करवाते समय मैंने बच्चों की अशुद्धियों पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया, क्योंकि अभी मेरा उद्‌देश्य बच्चों में केवल लिखने-पढ़ने में रुचि पैदा करना ही था। बच्चे अपने मन से लिखने लगें और मन के विचार कहने लगें, यही मेरा मुख्य उद्‌देश्य था। इसलिए मैंने बच्चों की ग़लतियों को नज़रअन्दाज़ किया। इस पद्धति से बच्चे बहुत कम समय में आनन्द के साथ पढ़ना-लिखना सीख रहे हैं और इन तरीक़ों में मेरा विश्वास भी दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है।

हंसराज तंवर महात्मा गाँधी राजकीय विद्यालय बनेठा, ब्लॉक उनियारा, ज़िला टोंक, राजस्थान में अध्यापक हैं। तीन दशकों से अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। शिक्षा में नवाचारों के पक्षधर हैं। डाइट के साथ जुड़कर विगत तीन वर्षों से राज्य एवं ज़िला स्तरीय क्रियात्मक शोध का कार्य रहे हैं। तात्कालिक मुद्दों, सामाजिक कुरीतियों पर आलेख व कविताएँ लिखते रहते हैं। इनकी दो किताबें *मन की हूँक* व *गुरुज्ञान* प्रकाशित हो चुकी हैं।

सम्पर्क : hansrajtanwar56@gmail.com

बच्चों को होमवर्क नहीं, बल्कि चुनौती दें

द्रोण साहू

बच्चे स्कूलों में अच्छे-से पढ़ें, यह हम सभी चाहते हैं और इसके लिए प्रयास भी करते रहते हैं। यह लेख ऐसे कुछ टास्क प्रस्तुत करता है जो बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करते हैं। लेखक कहते हैं कि एकल शिक्षक होते हुए सभी कक्षाओं को सँभालना मुश्किल होता है। लेकिन वे हमेशा यह सोचते और चाहते भी थे कि बच्चे स्कूल में हैं तो सीखना होता रहे। उन्होंने कुछ ऐसे टास्क बनाए जिनसे बच्चे सीखने में रत रहें, और वे ख़ुद अन्य कक्षाओं के लिए भी कुछ समय दे पाएँ। -सं.

यह बात उस समय की है, जब मेरे स्कूल में कुल 84 बच्चे थे। मैं वहाँ एक अकेला शिक्षक था। कक्षा 1 से 5 तक, सभी कक्षाओं को मुझे ही सँभालना था। काम करते हुए मुझे हमेशा लगता था कि मैं सभी बच्चों की सीखने में उपयुक्त मदद नहीं कर पाता हूँ। एकल शिक्षक की यह समस्या है ही। मैं अपनी इस एकल शिक्षकीय स्थिति में, बच्चों के साथ कुछ अर्थपूर्ण कर पाने के तरीक़ों के बारे में सोचता था। काम करते-करते मुझे एक तरीक़ा कुछ ठीक महसूस हुआ। यह तरीक़ा था बच्चों को ऐसे टास्क देना, जो उन्हें दिलचस्प लगें और जिनमें उनको जूझना पड़े, लेकिन अन्ततः वे दिए गए काम को कर भी सकें। ऐसे कुछ टास्क मैंने बनाए और बच्चों ने किए। जब बच्चों ने ये टास्क किए तो मुझे यह भी पता चला कि यह तरीक़ा केवल स्कूल में ही बच्चों को सीखने में व्यस्त रखने में मदद नहीं करता, बल्कि स्कूल के बाद और छुट्टियों के समय घर पर भी यह बच्चों को सीखने में व्यस्त रखने में बहुत मदद करता है। इसका कारण यह है कि स्कूल में मिले इन कामों को बच्चे घर में जाकर भी किसी भी हाल में पूरा करके ही दम लेते हैं। कक्षा में किए गए ऐसे दो टास्क का विवरण इस लेख में है।

पहला विवरण कक्षा पाँचवीं के बच्चों के साथ का है। पाँचवीं की पाठ्यपुस्तक में 'रोबोट' शीर्षक से एक पाठ है। मैंने इस पाठ को पढ़ाया और उसके बाद बच्चों को रोबोट द्वारा किए जा सकने वाले कार्यों को लिखने को कहा।

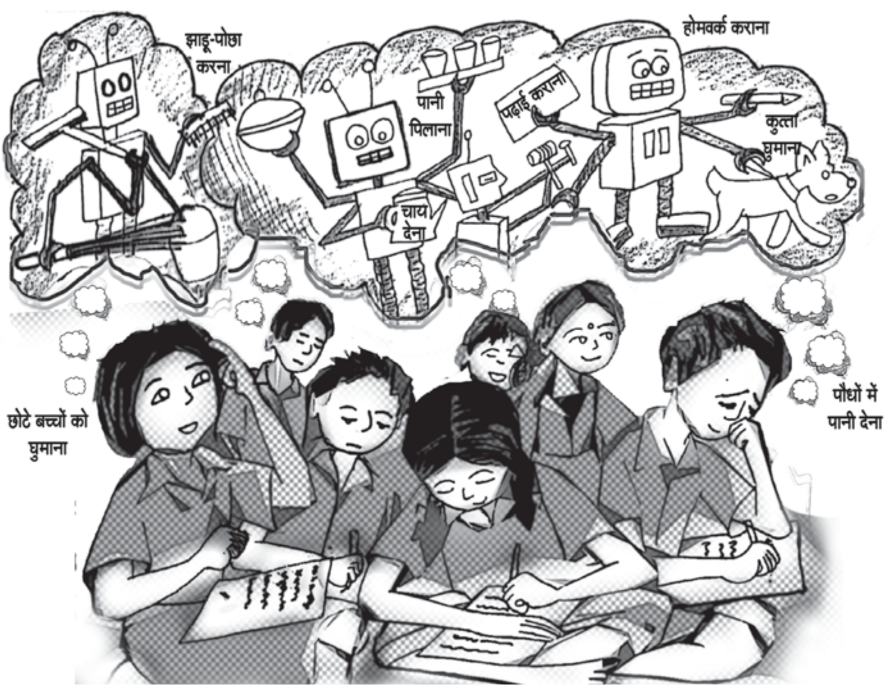
पाँचवीं कक्षा में पढ़ाने के बाद मैं, कक्षा 2 को पढ़ाने के लिए चल दिया। जैसा कि एकल शिक्षक के साथ अकसर होता है, मेरे साथ भी वही हुआ। कुछ ही देर में पाँचवीं कक्षा के दो बच्चों ने आकर मुझसे शिकायत की कि सर, कोई भी बच्चा दिया गया काम नहीं कर रहा है। सब बच्चे हल्ला और लड़ाई कर रहे हैं। मैं तुरन्त पाँचवीं कक्षा की ओर भागा। मेरे कक्षा में पहुँचते ही सारे बच्चे एकदम शान्त बैठ गए। मुझे बहुत ग़ुस्सा आ रहा था, पर मन-ही-मन यह भी सोच रहा था कि इन्हें ऐसा कौन-सा काम दूँ, जिससे ये मन लगाकर काम भी करते रहें और मैं अन्य कक्षाओं की ओर भी ध्यान दे सकूँ।

मैंने बच्चों से रोबोट वाले पाठ पर बातचीत करते हुए कहा, "तुम सब हल्ला और लड़ाई करने में माहिर हो, पर क्या तुम यह लिख सकते हो कि रोबोट कौन-कौन से काम कर सकता है? तुम्हारे पास 30 मिनट का समय है। देखते

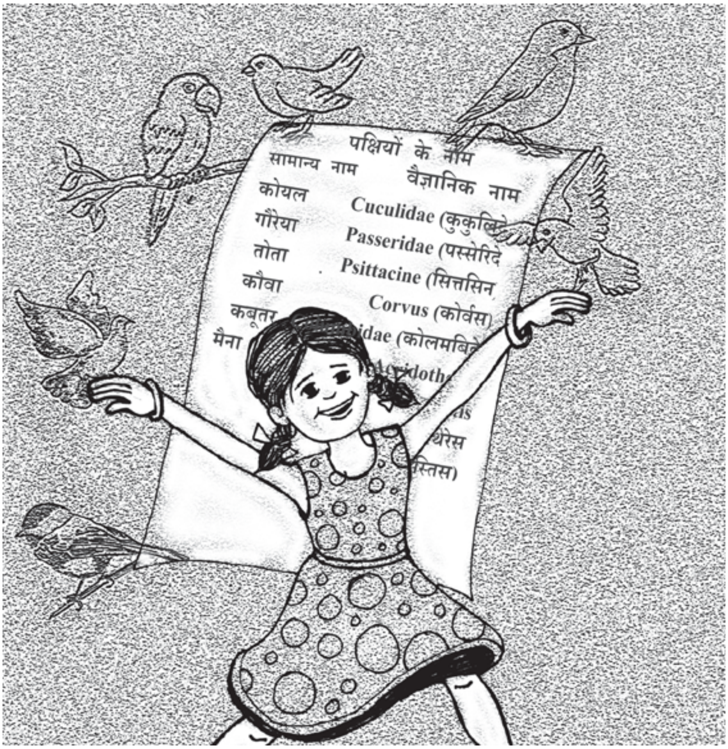
हैं, इस दिए गए समय में रोबोट द्वारा किए जाने वाले कितने कार्यों को आप लिख सकते हैं?" बच्चों को थोड़ी चुनौती और उत्सुकता महसूस हुई। बच्चे कहने लगे कि रोबोट झाड़ू लगा सकता है, फ़ोन का जवाब दे सकता है, आदि। मैंने उनसे कहा, "ऐसे ही रोबोट द्वारा किए जा सकने वाले कामों की आपको लम्बी-से-लम्बी सूची बनानी है।" मेरे ऐसा कहने पर सारे बच्चे शान्त होकर सोचने लगे। फिर उनमें से एक बच्चे ने सवाल किया, "सर, ज़्यादा-से-ज़्यादा कितना लिखेंगे?" मुझे उन्हें अधिक-से-अधिक देर तक व्यस्त रखना ही था, इसीलिए मैंने जवाब दिया, "कम-से-कम 20 तो लिखना ही है और जितना ज़्यादा लिख सको उतना अच्छा होगा!" ऐसा कहकर मैं फिर से कक्षा 2 में चला गया। यह बात लगभग 12:00 बजे के आसपास की होगी। कक्षा 2 में अपना काम करके मैं कक्षा 1 में चला गया। कक्षा 2 और फिर कक्षा 1 में ही मुझे लगभग 1:30 बज गए। आश्चर्य की बात यह थी कि कक्षा 5 से अभी तक कोई भी शिकायत, या कोई पानी-पेशाब की छुट्टी लेकर मेरे पास नहीं पहुँचा था। मुझे थोड़ा अजीब लगा। 1:30 बज चुके थे और मध्याह्न भोजन की छुट्टी भी देनी थी। मैंने पाँचवीं कक्षा में जाकर देखा कि सारे बच्चे रोबोट के काम लिखने में मगन थे। कक्षा में एकदम सन्नाटा था। सभी बिना अपना समय गँवाए लिखने में व्यस्त थे। चूँकि मैंने कहा था कि सबको अपना-अपना लिखना है तो सभी बच्चे एक दूसरे से कुछ दूर बैठे लिख रहे थे। आख़िर मैंने ही उनका ध्यान तोड़ा और कहा, "चलो, लिखना बन्द करो, अब सब खाना खाते हैं। उसके बाद किसने कितना लिखा है, देखेंगे!"

मध्याह्न भोजन के बाद सारे बच्चे कक्षा में पहले ही बैठ गए। अमूमन ऐसा दूसरे दिनों में होता नहीं था। बैठने की घण्टी लगने के बाद भी वे खेलते रहते थे। जल्दी ही वे मुझे बुलाने

रोबोट द्वारा किए जाने वाले काम लिखो



चित्र : शिवेंद्र पांडिया



चित्र : शिवेंद्र पांडिया

भी आ पहुँचे और बोले, "चलो न सर, देखना कि किसने कितना ज़्यादा लिखा है!" मैं कक्षा में गया और सबकी कॉपियों को एक दूसरे से बदलने के लिए कहा। उसके बाद उनसे कहा कि किसने कितना काम लिखा है, आख़िर में गिनती करके संख्या नीचे लिख दो। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कक्षा में उस दिन उपस्थित सभी 17 बच्चों ने रोबोट के कम-से-कम 20-25 काम लिखे थे।

और तो और, यह काम बच्चों ने घर पर जाकर भी किया, क्योंकि दूसरे दिन मुझे पता चला कि बच्चों ने लिखे गए वाक्यों में कुछ और वाक्य भी जोड़े थे। उनसे बातचीत की तो पता चला कि कुछ ने अपने बड़े भाई-बहनों से बातचीत करके और कुछ ने गूगल पर रोबोट और उसके कामों के बारे में पढ़कर बहुत-से वाक्य लिखे थे। एक बच्चा ऐसा था जिसने रोबोट के पूरे 130 काम लिखे थे।

ऐसा ही एक और उदाहरण कक्षा 4 के बच्चों के साथ किए गए काम का है। कक्षा 4 में भाषा की पाठ्यपुस्तक में 'चित्रकार मोर' नामक एक पाठ है। मैं अकसर बच्चों को होमवर्क देता था, लेकिन अधिकांश बच्चे होमवर्क करके लाते नहीं थे। इसलिए यहाँ भी मैंने होमवर्क के लिए कुछ नए टास्क सोचे। उदाहरण के लिए, इस पाठ को पढ़ते हुए यह चर्चा हुई थी कि हर पक्षी के दो तरह के नाम होते हैं– एक सामान्य, जिसका उपयोग अकसर हम करते हैं और एक वैज्ञानिक नाम। मैंने बच्चों को कहा कि उन्हें उन पक्षियों के नाम अपनी भाषा में लिखने हैं जो वे अपने आसपास देखते हैं, और फिर उनके वैज्ञानिक नाम भी लिखने है। सभी बच्चे अपने द्वारा लिखे इन नामों को कक्षा में पढ़कर सुनाएँगे।

अगले दिन लगभग सभी बच्चे यह काम करके लाए थे। उन्होंने पहले अपनी भाषा में पक्षी का नाम लिखा और फिर उसी का वैज्ञानिक नाम। हालाँकि इस काम में भी उन्हें अपने बड़ों व अन्य संसाधनों की मदद लेनी पड़ी, लेकिन सभी बच्चों ने यह काम किया। कुछ बच्चों ने 5-6 पक्षियों के नाम लिखे तो कुछ ने 10-12 के। एक बच्चा तो 50 पक्षियों के वैज्ञानिक नाम लिखकर लाया था।

इन अनुभवों पर मेरी सोच

इस तरह के और भी काम मैंने बच्चों के साथ कक्षा में किए। ऐसे कुछ कामों के उदाहरण



चित्र : शिवेंद्र पांडिया

इस लेख के अन्त में दिए गए हैं। बच्चों ने ऐसे कामों को करने में दिलचस्पी ली और काम करने में ख़ुद को व्यस्त भी रखा। मैं इस बात पर सोचता रहा हूँ कि बच्चों को ऐसे काम क्यों अच्छे लगे! जो टास्क मैंने दिए, उनसे मैं भी यह सुनिश्चित करना चाहता था कि बच्चे सीखें। साथ ही यह भी कि उनकी सीखने में इतनी दिलचस्पी हो कि वे ख़ुद से उस प्रक्रिया में संलग्न रहें। जो काम मैंने दिए, वे कक्षा के अन्दर या बाहर करने को दिए जा सकते हैं। ये काम ऐसे नहीं हैं, जिनमें उनको सिर्फ़ दी गई विषय-वस्तु का दोहरान करना है। अकसर पाठ्यपुस्तकों में दिए गए प्रश्न ऐसे ही होते हैं। वे पाठ्यवस्तु से इतर जाने का मौक़ा ही नहीं देते। मसलन, बच्चे पाठ पढ़कर रोबोट द्वारा किए जाने वाले पाँच कामों को लिख सकते थे और यह काम यहीं ख़त्म हो सकता था। लेकिन जब उनसे कहा गया कि कम-से-कम 20 काम लिखने हैं, तब उन्होंने पाठ्यपुस्तक से इतर भी सोचने का काम किया। शायद यह कहना कि कम-से-कम कितने वाक्य लिख सकते हैं, बच्चों को अपनी क्षमताओं को जाँचने, और इसलिए सोचने व लिखने के लिए एक तरह का सकारात्मक धक्का देता है। कक्षा 5 के बच्चे पढ़ना और लिखना जानने के साथ रोबोट के बारे में पाठ के इतर भी जानते थे, इसलिए मुझे यह पता था कि वे पुस्तक से ढूँढ़कर 7-8 वाक्य लिख ही लेंगे। लेकिन वे इससे कुछ ज़्यादा कर सकते हैं, यह भी मैं जानता था, इसलिए मैंने उन्हें कम-से-कम 20 वाक्य बनाने को कहा। मुझे लगता है कि वे और ज़्यादा भी बना सकते थे। दूसरा, मुझे बाद में लगा कि कितने ज़्यादा वाक्य लिखे हैं, यह महत्त्वपूर्ण नहीं रहा, जितना कि इस काम के बारे में सोचना और कम-से-कम कुछ वाक्य इस बारे में लिख पाना। पूरी कक्षा के वाक्यों को देखें तो काफ़ी वाक्य बच्चों ने बना लिए थे और उन्होंने एक दूसरे के द्वारा बनाए गए वाक्यों को भी पढ़ा। उन्होंने उनमें से उन वाक्यों को भी रेखांकित किया जो रोबोट के काम नहीं, बल्कि उसकी संरचना के बारे में थे।

मुझे यह भी लगता है कि काम के लिए दिए गए निर्देश की शब्दावली और उसे बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करने का तरीक़ा भी अकसर उससे भिन्न हो जाता है जिस तरह से

चित्र : शिवेंद्र पांडिया





चित्र : शिवेंद्र पांडिया

कक्षाकार्य या गृहकार्य बच्चों को दिया जाता है। इनकी शब्दावली और इसमें दिए गए काम की प्रकृति में एक खुलापन रहता है, यह खुलापन शायद बच्चे के दिमाग़ को सक्रिय कर देता है और उसको सोचने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह प्रोत्साहन एक तरह से सीखने के लिए संघर्ष करने का जज़्बा पैदा कर देता है।

दूसरे उदाहरण में भी बच्चों ने कोशिश की। इसके बावजूद भी, कि पक्षियों के वैज्ञानिक नाम लिखना मुश्किल काम है, मुख्य बात यह थी कि बच्चों ने इन कुछ पक्षियों के प्रचलित / क्षेत्रीय नाम सोचे और फिर वैज्ञानिक नाम ढूँढ़े और लिखकर भी लाए। हालाँकि बाद में मुझे यह लगा कि क्षेत्रीय नाम लिखना ही काफ़ी था। पक्षियों के वैज्ञानिक नाम लिखना कक्षा 5 के स्तर पर बहुत सार्थक अभ्यास नहीं है क्योंकि यह पक्षियों या उनके वर्गीकरण के बारे में जानने में कुछ मदद नहीं करता। अतः पक्षियों के वैज्ञानिक नाम वाले टास्क में काम कुछ ख़ास आगे नहीं बढ़ा।

टास्क देते समय कुछ बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, पाठ्यपुस्तक से सिर्फ़ नक़ल करने, बार-बार दोहराने या लिखने का काम एक अच्छा टास्क नहीं है, क्योंकि इसमें बच्चे न तो ख़ुद से कुछ सोचते हैं, न कोई प्रश्न पूछ सकते हैं, न ही जो समझा है, उसे अपने शब्दों में बता सकते हैं। माने, बच्चे अपनी क्षमता के अनुसार अपने लिए कुछ कर पाएँ, ऐसी गुंजाइश ही उसमें नहीं है। शायद इसीलिए वे ऐसे कामों में मसरूफ़ होना भी पसन्द नहीं करते। वहीं कक्षा 3-4 में पाठ्यपुस्तक में दी गई अपनी मनपसन्द कहानी को चुनना और फिर उस कहानी में आए 15 ऐसे शब्दों को लिखना जो 'क' अक्षर से शुरू होते हैं, या उस कहानी में क्या अच्छा लगा, इसे अपने शब्दों में लिखना भी एक रोचक टास्क हो सकता है। यह भी कि रोज़ एक जैसे टास्क नहीं देने चाहिए। बच्चों को पाठ्यपुस्तक के अन्दर और उसके बाहर की भी चुनौतियाँ देनी चाहिए।

कक्षा में और गृहकार्य में दिए जाने वाले टास्क के कुछ उदाहरण :

भाषा से सम्बन्धित काम :

- पाठ में आए नाम वाले शब्द सबसे ज़्यादा कौन-कौन लिख सकते हैं?
- पुस्तक में 'म' से शुरू होने वाले शब्दों पर गोला लगाना है। देखते हैं, 10 मिनट में हम सब कितने अधिक शब्दों पर गोला लगा पाते हैं?
- बिना मात्रा वाले, दो या तीन अक्षर वाले सबसे ज़्यादा शब्द कौन-कौन लिख सकते हैं?
- अपने नाम के पहले अक्षर से प्रारम्भ होने वाले सबसे ज़्यादा शब्द कौन-कौन लिखकर ला सकते हैं?

- ‘ग’ अक्षर से 5 मिनट में कम-से-कम 15 शब्द लिखना।
- फल व सब्ज़ियों के चित्र और उसके नीचे उनका नाम लिखना।
- पाठ में आए तुकान्त शब्दों को लेकर 10 नई पंक्तियाँ बनाना।
- पाठ को पढ़कर पाठ पर कम-से-कम 5 नए प्रश्न बनाना।
- 15 मिनट में 10 प्रश्नवाचक वाक्य बनाना।
- अपने बड़ों से बातचीत कर कम-से-कम 10 मुहावरों या लोकोक्तियों को लिखना और उनका प्रयोग करके बताना।

गणित विषय से सम्बन्धित काम :

- 10 मिनट में ज़्यादा-से-ज़्यादा ऐसी संख्याएँ लिखना जिनका योग 40 आता है।
- तीन अंकों की संख्याओं वाले जोड़ और बाक़ी के कम-से-कम 10 सवाल बनाना।
- 1 से 100 तक की गिनती के बारे में सोचो, और कम-से-कम ऐसी 5 संख्याएँ लिखो जिनमें इकाई और दहाई के अंक समान हों। 1 से 100 के बीच ऐसी कुल कितनी संख्याएँ हैं, बता सकते हो?
- अपने आसपास देखते हुए ज़्यादा-से-ज़्यादा तिकोन के उदाहरण लिखना।
- आपके पास 5 चॉकलेट हैं, कितनी चॉकलेट और मिलाई जाएँ कि कुल 20 चॉकलेट हो जाएँ? इस तरह के 5 नए प्रश्न बनाना।

यहाँ दिए गए अधिकांश उदाहरण कक्षा 3, 4 और 5 के लिए हैं। इस तरह के टास्क देकर मैं अपनी कक्षाओं काम करता हूँ। बच्चे सीख रहे हैं और मुझे भी नए टास्क बनाने को कहते रहते हैं।

द्रोण साहू शासकीय प्राथमिक शाला बिजेमाल, महासमुंद, छत्तीसगढ़ में 15 वर्षों से पढ़ा रहे हैं। वे हिन्दी, अँग्रेज़ी और शिक्षा में स्नातकोत्तर हैं। इनकी कक्षाओं में दो भाषा समुदाय से बच्चे आते हैं, जिनके साथ वे काम करना पसन्द करते हैं। शौक़िया तौर पर शिक्षा पर कविताएँ भी लिखते हैं।

सम्पर्क : drdron2005@gmail.com

पत्र और संवेदनशील मुद्दे : कक्षा–कक्षीय प्रक्रिया

प्रतिभा शर्मा

उच्च प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के उद्देश्य में बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाना है ही, लेकिन इसके साथ-साथ अन्य व्यापक उद्देश्य भी हैं। लेख में, इन उद्देश्यों को पाने लिए विद्यार्थियों के साथ पत्र लेखन पर काम करने के अनुभव-आधारित तरीक़े सुझाए गए हैं। ये तरीक़े विद्यार्थियों के लिए पत्र लेखन के परम्परागत ढाँचे से परे सोचने-विचारने के अवसर बनाते हैं। विद्यार्थी बड़े लेखकों के पत्र पढ़ते हैं, उनके विचार समझने की कोशिश करते हैं, और अपने पत्रों के लिए लीक से हटकर नए-नए विषय सोचते हैं। विद्यार्थी उनपर दिलचस्पी और ख़ुशी से लिखते हैं, परिवार और सखा-सहेलियों को भेजते हैं, और फिर अपनी कक्षा में सभी के बीच पढ़ते और उनपर बात करते हैं। वे अपने पत्रों में अपने आसपास घटने वाली घटनाओं व चिन्ताओं को भी शामिल करते हैं। -सं.

पृष्ठभूमि

भाषा का उद्देश्य बहुत व्यापक है जिसमें बच्चों द्वारा ज्ञान और आनन्द प्राप्ति, दोनों ही आवश्यक हैं। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक कक्षाओं में हम भाषाई उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न विधाओं का उपयोग करते हैं। इनमें कविता, कहानी, निबन्ध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, पत्र लेखन, आदि सभी शामिल हैं। उच्च प्राथमिक कक्षाओं में इन सभी विधाओं पर काम करने का एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि बच्चे समझ पाएँ कि साहित्य क्या है, और उसमें उनकी रुचि बन पाए। भाषा सीखने के अन्य उद्देश्य भी यहाँ साथ-साथ चलते हैं। मसलन, भाषा में विचारों को गढ़ना और सम्प्रेषित करना। विचार बनने की प्रक्रिया शुरू होने के बाद मानसिक उठा-पटक शुरू होती है, कई तर्क-वितर्क आपसे बतियाते हैं, और भावनाएँ भी पनपती हैं।

बच्चों में सोच-विचार का यह सिलसिला शुरू करने और जारी रखने का एक ज़रिया पत्र लेखन हो सकता है। मुझे लगता है कि भाषा शिक्षण का उद्देश्य सिर्फ़ लिखने-पढ़ने में पारंगत कर देना मात्र ही नहीं हो सकता। इससे आगे बढ़कर इसका उद्देश्य बच्चों का विषय की सीमा से इतर सोच-विचार करना और किसी मुद्दे पर उनके अन्तरतम को झकझोरना भी है, ताकि वे समाज, परिवेश से आगे बढ़ते हुए अपने देश से जुड़े मुद्दों की भी पड़ताल कर सकें। इसी समझ के साथ पिछले दिनों कक्षा 8 में 30 बच्चों के साथ पत्र लेखन विधा पर काम किया गया। इन 30 बच्चों में हर स्तर के बच्चे थे जिनकी समझ के स्तर, सोचने के नज़रिए, लेखन अभिव्यक्ति और लेखन शैली में बहुत अन्तर था। सबके साथ काम करने के लिए चर्चा, पठन, प्रतिपुष्टि, पुनःपठन और लेखन जैसी गतिविधियों को कक्षा में स्थान दिया गया।

आमतौर पर हम पत्र के प्रारूप, सम्बोधन, अभिवादन, पत्रों के प्रकार – औपचारिक, अनौपचारिक, शिकायती – आदि पर काम करा ही लेते हैं, लेकिन मेरे मन में विचार था कि हम

प्रारूप पर ज़ोर नहीं देंगे। बच्चे ख़ुद सोचें और अपनी तरह से और मन से अपनी बात लिखें।

पिछली कक्षाओं में किया गया काम

कक्षा 8 में किए जाने वाले काम की चर्चा से पहले मैं पिछली कक्षाओं में पत्र लेखन के सन्दर्भ में किए गए काम के बारे में भी संक्षेप में बताना चाहूँगी। पिछली कक्षाओं में हमने इस विधा पर काम करते हुए पत्रों के वितरण की प्रक्रिया को जान लिया था; जब बमोर (गाँव) के बच्चों ने शिक्षकों के नाम पत्र लिखकर पोस्ट किए थे। इसके प्रथम चरण में शिक्षकों ने ख़ुद आकर अपने पत्रों के बारे में असेम्बली में बताया। आगे ये प्रक्रिया न सिर्फ़ अपने स्कूल तक सीमित रही, बल्कि अज़ीम प्रेमजी स्कूल सिरोही (राजस्थान) व अज़ीम प्रेमजी स्कूल यादगीर (कर्नाटक) तक पत्र-व्यवहार के ज़रिए चलती रही। इस तरह की गतिविधि करते वक़्त मैं भी बच्चों के साथ शामिल होती और अपने बच्चों (यादगीर के) के लिए पत्र लिखने बैठती। इससे सारे बच्चे सजग होकर लिखने में व्यस्त हो जाते। फिर हम सब अपने-अपने पत्र पढ़कर कक्षा में सुनाते और कक्षा में डिस्प्ले बोर्ड पर लगाते। जब पत्र भेजने की बारी आई तो मेरा पत्र भी बच्चों के पत्रों के साथ भेजा गया। जब पत्रों का सिलसिला शुरू हो गया और उनका आदान-प्रदान होने लगा। पत्रों को असेम्बली में भी प्रस्तुत करवाया गया। जब बच्चों को पत्र मिलते तो अपने अनदेखे दोस्त को देखने-जानने की उत्सुकता उनके मन में होती। वे एक के बाद एक पत्र लिखते और अपने दोस्त की पसन्द-नापसन्द, मूवी, कार्टून, पसन्दीदा किताब, गाना, उसकी ख़ास बात, आदि सबकुछ जान लेना चाहते थे। वे उनसे मिलने के लिए पत्र के माध्यम से निमंत्रण भी भेजते।

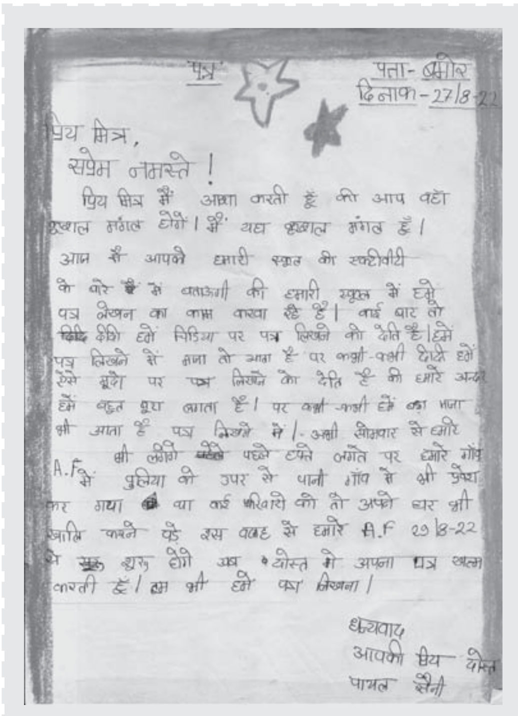
इस सबके साथ ही बच्चे 'भगत सिंह के पत्र', 'पिता का पत्र पुत्री के नाम' और 'संसार पुस्तक है' शीर्षक वाले एनसीईआरटी के पाठ पढ़ चुके थे। विद्यार्थियों ने इस तरह के काम भी किए थे : दी गई किसी रचना को पढ़ना, उस रचना के परिप्रेक्ष्य को, लेखक के विचारों को समझना, और तब अपने अनुभवों एवं विचारों के साथ लेखक के विचारों से संगति / सहमति / असहमति को अभिव्यक्त करना। लेकिन अब कक्षा 8 में किए जाने वाले पत्र लेखन में उन्हें ख़ुद मुद्दे का चयन करना था और उसपर सोचकर अपने विचार लिखने थे।

कक्षा 8 में किया गया काम

एक बार फिर से हमने 'भगत सिंह के पत्र', 'पिता का पत्र पुत्री के नाम', हरिशंकर परसाई का 'मेरे जेबकतरे के नाम' पत्रों पर बातचीत की। ऐसे भी कुछ विद्यार्थी थे जो पहले की कक्षा में इनसे नहीं गुज़र पाए थे, उन सभी विद्यार्थियों ने पाठों को पढ़ा। अगला काम था– बातचीत।



कक्षा में प्रत्येक बच्चे के पास अपने अनुभव, नई बातें, कुछ शिकायतें और पढ़ी हुई कहानियों की अनोखी बातें थीं। पूर्व में पढ़े गए पत्रों की याद दिलाते हुए बातचीत शुरू की गई। मैंने उनसे बातचीत करते हुए कहा कि आपने पहले पत्र लिखे ही हैं। आप सभी पत्रों के प्रारूप से परिचित भी हैं। आज भी हम पत्र ही लिखेंगे, लेकिन उनके लिए शीर्षक और विचार आपके ही होंगे। बताइए, आप किन-किन शीर्षकों को लेकर पत्र लिखना चाहेंगे? इस तरह बातों-बातों में उनके पास रखी विचारों की पोटली खुलनी शुरू हुई। किसी बच्चे ने अपने दोस्त को पत्र लिखकर अपनी पसन्द के बारे में बताने को कहा तो किसी ने अपनी नापसन्द के बारे में लिखने को चुना। किसी बच्चे ने अपने दोस्त के बुरे बर्ताव (जो उसे ख़राब लगा था) पर टिप्पणी देने की बात कही; तो किसी ने अपनी ख़ास बात अपने दोस्त से साझा करने की बात रखी। इसी तरह, किसी बच्चे ने अपने नाना-नानी के घर छुट्टियाँ बिताने के अनुभव को साझा करना चाहा तो किसी ने बुख़ार होने पर स्कूल न आने को लेकर अपना अनुभव बताने की बात कही। चूँकि यहाँ सबने स्वेच्छा से कुछ लिखना तय किया था तो मुझे भी हल्का महसूस हुआ क्योंकि बिना दबाव के अब उनके पास अपना काम था, जिसे करने के लिए वे ख़ुद ही राज़ी हुए थे। सभी बच्चे अपने स्तर के अनुरूप लिख रहे थे (यहाँ स्तर से अभिप्राय बच्चों की विचारगत अभिव्यक्ति की गुणवत्ता एवं लेखन की शैलीगत विभिन्नता से है)। इस समय मैं कक्षा में घूमकर उन बच्चों की मदद कर रही थी, जिन्हें लिखने के लिए थोड़ा प्रेरित करना पड़ता था। उनमें आत्मविश्वास जगाने के लिए कुछ देर उनके साथ बैठकर काम शुरू कराने के बाद वे भी लिखने में लग गए। एक समूह ऐसा भी बनाया गया था, जिसमें परस्पर मदद से बच्चे पत्र की दिक़्क़तों को ख़ुद-ब-ख़ुद दूर कर रहे थे। यहाँ मेरा काम न के बराबर रह गया था क्योंकि उनके विचार पत्रों में आते जा रहे थे। कुछ बच्चों ने अनुभवों को पत्र द्वारा अभिव्यक्त करने की पहल की। मसलन, बचपन में जिए गए किसी पल या ख़ास घटना या आनन्द के अनुभव को लिखना; अपने स्कूल के पहले दिन का अनुभव अपनी मौसी या किसी दोस्त से साझा करना; अपने जन्मदिन पर मिले उपहार से मिली ख़ुशी को किसी रिश्तेदार या साथी को साझा करना; स्कूल की असेम्बली में पेश किए गए नाटक के अनुभव लिखना; अपनी किसी यात्रा के वर्णन को साझा करना; आदि। कुछ बच्चों ने बीच से पौधे बनने की प्रक्रिया पर लिखा तो कुछ ने गाँव में होने वाले सरपंच और वार्ड मेम्बर के चुनाव की चर्चा की। कुछ पत्रों के शीर्षक ऐसे भी थे, जिनमें दोस्त अपनी शिकायत पर जवाब में सफ़ाई देता है और एक बार माफ़ करने की गुज़ारिश करके आगे ऐसा न करने का वादा करता है।

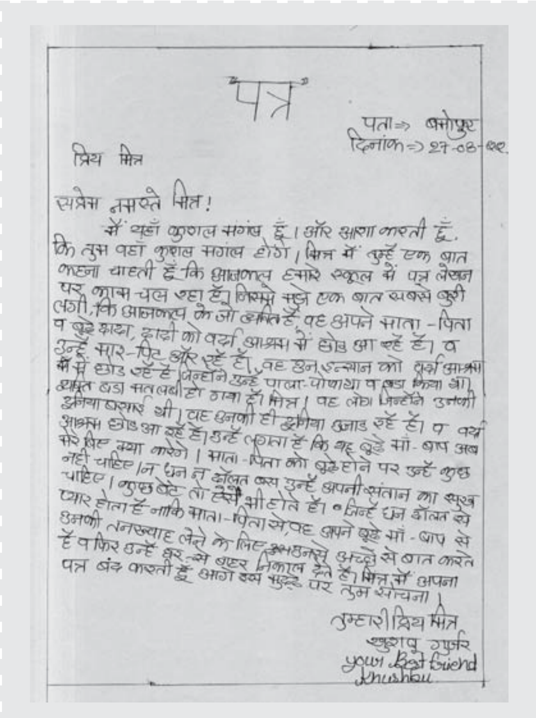

पत्र
पता- अमीर
दिनांक- 27/8-22

प्रिय मित्र,
सप्रेम नमस्ते !

प्रिय मित्र मैं आशा करती हूँ की आप वहाँ कुशल मंगल होंगे। मैं यहा कुशल मंगल हूँ। आज मैं आपको हमारी स्कूल की एक्टीवीटी के बारे में बताऊंगी की हमारी स्कूल में हमे पत्र लेखन का काम करवा रहे हैं। कई बार तो ~~कोई~~ कोई हमें चिड़िया पर पत्र लिखने को देते हैं। हमें पत्र लिखने में मजा तो आता है पर कभी-कभी टीचर हमें ऐसे मुद्दे पर पत्र लिखने को देते हैं की हमारे अन्दर हमें बहुत बुरा लगता है। पर कभी-कभी हमें बड़ा मजा भी आता है पत्र लिखने में। अभी सोमवार से हमारे A.F. भी लगेंगे ~~[illegible]~~ पहले हफ्ते लगते पर हमारे गाँव में पुलिया के उपर से पानी गाँव में भी प्रवेश कर गया था कई परिवारों को तो अपने घर भी खाली करने पड़े इस वजह से हमारे A.F 29/8-22 से ~~शुरु~~ शुरु होंगे अब दोस्त मैं अपना पत्र खत्म करती हूँ। तुम भी हमें पत्र लिखना।

धन्यवाद
आपकी प्रिय दोस्त
पायल सैनी

अगला काम कुछ कार्यालयी पत्रों की जानकारी देना था, अतः शिकायती पत्रों और



पत्र

पता => बमोपुर
दिनांक => 27-08-22

प्रिय मित्र

सप्रेम नमस्ते मित्र!

मैं यहाँ कुशल मंगल हूँ। और आशा करती हूँ. कि तुम वहाँ कुशल मंगल होगी। मित्र मैं तुम्हें एक बात कहना चाहती हूँ कि आजकल हमारे स्कूल में पत्र लेखन पर काम चल रहा है। जिसमे मुझे एक बात सबसे बुरी लगी, कि आजकल के जो व्यक्ति है, वह अपने माता-पिता व बूढ़े काका, दादी को वृद्ध आश्रम में छोड़ आ रहे है। व उन्हें मार-पिट और रहे है। वह उन इन्सान को वृद्ध आश्रम में छोड़ रहे है जिन्होने उन्हें पाला-पोषा था व बड़ा किया था। व्यक्ति बड़ा मतलबी हो गया है मित्र। वह लोग जिन्होने उनकी दुनिया बसाई थी। वह उनकी ही दुनिया उजाड रहे है। व वृद्ध आश्रम छोड़ आ रहे है। उन्हें लगता है कि वह बूढ़े माँ-बाप अब मेरे लिए क्या करेंगे। माता-पिता को बूढ़े होने पर उन्हें कुछ नहीं चाहिए। न धन न दौलत बस उन्हें अपनी संतान का सुख चाहिए। कुछ बेटे तो ऐसे भी होते है। जिन्हें धन दौलत से प्यार होता है नाकि माता-पिता से, वह अपने बूढ़े माँ-बाप से उनकी तनख्वाह लेने के लिए उनसे अच्छे से बात करते है व फिर उन्हें घर से बाहर निकाल देते है। मित्र मैं अपना पत्र बंद करती हूँ आगे इस मुद्दे पर तुम सोचना।

तुम्हारी प्रिय मित्र
खुशबू गुर्जर
your Best friend
Khushbu

आवेदन पत्रों पर बात की गई। बच्चों से पूछा गया कि जब आप किसी कार्यालय, मसलन, प्रधानाचार्य, थाना प्रभारी, बैंक मैनेजर या किसी उच्च अधिकारी को पत्र लिखेंगे तो उन्हें अपने काम के बारे में कैसे बताएँगे? बातचीत में उभरे उनके जवाब, उनको ही समझाने का काम कर रहे थे। अब पत्रों के वर्गीकरण को समझाना आसान था। बच्चे स्वयं उदाहरणों के माध्यम से वर्गीकरण समझ रहे थे। चूँकि विषयवस्तु को बच्चों ने ख़ुद चुना था, इसलिए हर बच्चे के पास कहने को कुछ-न-कुछ था। अब पत्र लिखना उनके लिए आसान हो गया था और इस तरह से



अब बच्चे अपने मन का विषय चुनकर उसपर लिख रहे थे। वे कहीं कल्पना की उड़ान तय कर रहे थे तो कहीं अपनी यादों में डूबकर लिख रहे थे। कक्षा के कालांश का समय, समय-सारणी में 45 मिनट ही निश्चित है, अतः एक कक्षा में कुछ बच्चों के ही पत्र पूरे हो सके। जिनके पत्र अधूरे रह गए हैं; वे घर से लिखकर लाएँगे, यह तय हुआ।

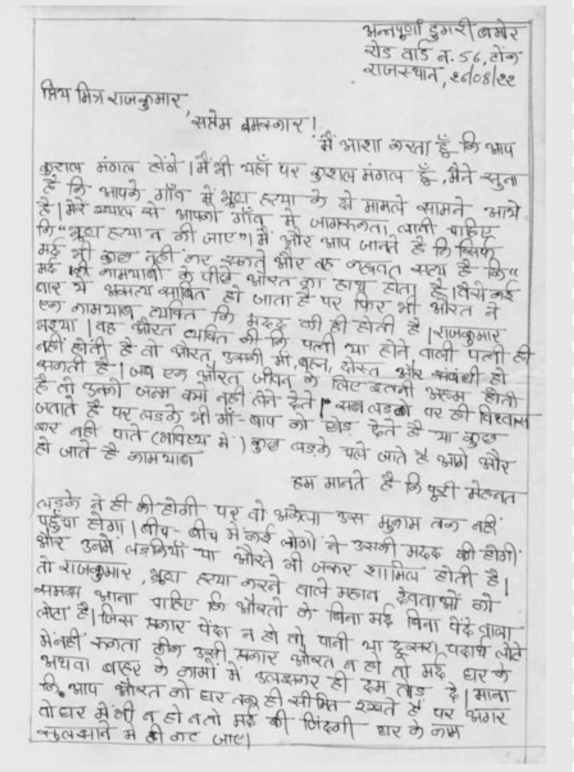
अगले दिन की शुरुआत

अगले दिन के लिए मैंने तय किया था कि लगभग पाँच बच्चों के पत्र कक्षा में सुने जाएँगे। इस प्रक्रिया में हर स्तर के बच्चे की भागीदारी होगी। अगली कक्षा पत्र सुनने से ही शुरू हुई। इसमें पाँच बच्चों ने उत्साह से अपने पत्र सुनाए। बाक़ी बच्चे भी पत्र सुनाने को उत्सुक थे, पर ये कहकर विराम दिया गया कि आज की कक्षा में कुछ मुद्दे तय करके उनपर लिखना शुरू करते हैं। यहाँ से हमारी आज की कक्षा की बातचीत शुरू हुई।

मैंने कहा कि आपको अब अपने आसपास, समाज और देश के विषय में कुछ सोचना चाहिए। आपने अब तक अपने मित्रों, रिश्तेदारों के बारे में सोचा है और उनको पत्र लिखे हैं। पर क्या कुछ ऐसे मुद्दे भी हैं, जो हमारे समाज और देश

को प्रभावित करते हैं? बच्चों ने इनपर चर्चा की और तय किया कि वह समस्या है– दहेज प्रथा।

दरअसल उन दिनों बमोर में एक महिला की हत्या की ख़बर सामने आई थी। लड़के वाले, लड़की पक्ष से पैसों की माँग कर रहे थे और माँग पूरी न होने पर महिला की पिटाई की गई। इससे उसकी मौत हो गई। चूँकि मुद्दा संवेदनशील था, इसलिए हमने इसपर काफ़ी बात की। बातचीत से निकला कि जिनसे हमें दु:ख पहुँचता हो या हम सोचने पर मजबूर हो जाते हों, ऐसे मुद्दे संवेदनशील होते हैं। हालाँकि ये परिभाषा पर्याप्त नहीं है, परन्तु उन्होंने इसके आधार पर मुद्दे बताने शुरू किए। मैंने सारे मुद्दे ब्लैकबोर्ड पर दर्ज कर दिए। इनमें तरह-तरह के मुद्दे आए। यहाँ से संवेदनशील मुद्दों के सूचीकरण का काम शुरू किया गया। बच्चों ने चार्ट पेपर पर इन मुद्दों को दर्ज किया। जब सभी मुद्दों का सूचीकरण हो गया तो बच्चों ने इस चार्ट को कक्षा की दीवार पर चस्पा कर दिया। बच्चों द्वारा तय किए गए कुछ संवेदनशील मुद्दे नीचे लिखे हुए हैं :



अन्नपूर्णा डुमरी बमोर
रोड वार्ड न. 56, टोंक
राजस्थान, 26/08/22

प्रिय मित्र राजकुमार,
सप्रेम नमस्कार।
मैं आशा करता हूँ कि आप कुशल मंगल होंगे। मैं भी यहाँ पर कुशल मंगल हूँ, मैंने सुना है कि आपके गाँव में भ्रूण हत्या के दो मामले सामने आये है। मेरे ख्याल से आपको गाँव मे जागरूकता लानी चाहिए कि "भ्रूण हत्या न की जाए"। मैं और आप जानते है कि सिर्फ मर्द भी कुछ नही कर सकते और यह कहावत सत्य है कि "मर्द की कामयाबी के पीछे औरत का हाथ होता है। वैसे कई बार ये असत्य साबित हो जाता है पर फिर भी औरत ने एक कामयाब व्यक्ति कि मदद की ही होती है। राजकुमार जरूरी नहीं होती है वो औरत व्यक्ति की कि पत्नी या होने वाली पत्नी ही, वो औरत उसकी माँ, बहन, दोस्त और संबंधी हो सकती है। जब एक औरत जीवन के लिए इतनी अहम होती है तो उनको जन्म क्यों नही लेने देते। सब लड़को पर ही विश्वास जताते है पर लड़के भी माँ-बाप को छोड़ देते है या कुछ कर नही पाते (भविष्य मे) कुछ लड़के चले जाते है आगे और हो जाते है कामयाब

हम मानते है कि पूरी मेहनत लड़के ने ही की होगी पर वो अकेला उस मुकाम तक नही पहुँचा होगा। बीच-बीच मे कई लोगो ने उसकी मदद की होगी और उनमे लड़कियाँ या औरते भी जरूर शामिल होती है। तो राजकुमार, भ्रूण हत्या करने वाले महान देवताओं को समझ आना चाहिए कि औरतो के बिना मर्द बिना पेंदे वाला लोटा है। जिस प्रकार पेंदा न हो तो पानी या दूसरा पदार्थ लोटे मे नही रुकता ठीक उसी प्रकार औरत न हो तो मर्द घर के अथवा बाहर के कामों मे उलझकर ही दम तोड़ दे। माना कि आप औरत को घर तक ही सीमित रखते है पर अगर वो घर मे भी न हो न तो मर्द की जिंदगी घर के काम सुलझाने मे ही कट जाए।

- मटकी से पानी पीने पर बच्चे की पिटाई से मौत : दलित बच्चे के साथ हुआ भेदभाव।
- आवारा पशुओं और उनके द्वारा हो रही घटनाएँ तथा नगर परिषद का रवैया।
- निरन्तर हो रही वृक्षों की कटाई से चिड़ियों की परेशानी।
- पक्षियों को पिंजरे में बन्द किया जाना चाहिए या खुला छोड़ देना चाहिए?
- वृद्ध आश्रम में भेजे जाने वाले बुज़ुर्गों की पीड़ा।
- गाँव की एक महिला की घरेलू हिंसा की पीड़ा से थाना प्रभारी को अवगत कराना।
- भ्रूण हत्या के दुष्परिणाम।
- बाल विवाह की ख़ामियाँ।
- रंगभेद, जातिवाद, असमानता, आदि।

हमने इन मुद्दों पर एक-एक कर बातचीत करनी शुरू की, ताकि हर बच्चा मुद्दे पर अपनी बात कहने और जागरूक रहकर कुछ लिखने को तैयार हो सके। पहले हम मुद्दे पर बात करते, फिर लिखने को देते और लिखे हुए को पढ़ते। कुछ पत्र वे ख़ुद पढ़कर सुनाते, कुछ पत्रों को मैं भी कक्षा में हाव-भाव के साथ पढ़ती। इस तरह की बातचीत और लेखन में हमने 5-6 कालांश बिताए। सबने लिखने की प्रक्रिया में भाग लिया। जिन बच्चों को लिखने में

समस्या थी, उनको ध्यान में रखकर एक मिला-जुला समूह बनाया, जिसमें हर स्तर के छात्र थे। इन बच्चों को कोई शब्द न लिखना आने पर समूह के अन्य साथी उनकी मदद करते थे। जब यह काम पूरा हो गया, तब हमने उनके पत्रों की फ़ोटोकॉपी को उनकी कक्षा में डिस्प्ले बोर्ड पर लगाया। उनके मूल पत्रों की एक किताब बनाकर पुस्तकालय में भी रखी। बच्चों द्वारा लिखे गए पत्रों को संकलित करके अन्य विद्यार्थियों के सीखने के लिए पुस्तक का रूप दिया गया, जो 'बच्चों के सन्दर्भ बच्चों के लिए' की तर्ज़ पर आगामी कक्षाओं के लिए उपयोगी साबित होगी। ये पत्र आज भी अतिरिक्त सन्दर्भ के रूप में दूसरी कक्षाओं के बच्चों के काम आते हैं।

हालाँकि, ऐसा कह पाना मुश्किल होगा कि इसपर काम पूरा हो गया, क्योंकि हर क्षेत्र में सीखने की गुंजाइश हमेशा रहती है। इस प्रक्रिया को विराम देना अभी पर्याप्त नहीं है क्योंकि ये अनवरत चलने वाली है। पत्र लिखना बच्चे सीख चुके हैं, ये कहा जा सकता है लेकिन संवेदनशील हो जाने का दावा पत्र लिखने-भर से पूरा होने वाला नहीं। विद्यार्थियों और मैंने निश्चित किया है कि इस तरह की जागरूकता की मुहिम को कक्षा में छेड़ते रहना बहुत ज़रूरी है।

डॉ प्रतिभा शर्मा शिक्षा के क्षेत्र में 15 वर्ष से काम कर रही हैं। उन्होंने मानस गंगा सीनियर सेकेंडरी स्कूल (बोध शिक्षा समिति कूकस) में 6 वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। प्रतिभा ने केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के जयपुर परिसर से संस्कृत भाषा में पीएचडी और बीएड की शिक्षा प्राप्त की। संस्कृत विषय पर लिखे उनके कई लेख संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके हैं। शिक्षा सम्बन्धी लेख 'टीचर्स ऑफ़ इंडिया' पोर्टल पर भी प्रकाशित हुए हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी स्कूल टोंक, राजस्थान में अध्यापन कार्य कर रही हैं।

सम्पर्क : pratibha.sharma@azimpremjifoundation.org

बच्चे असफल कैसे होते हैं

अभिषेक कुमार द्विवेदी

"कक्षा में आने वाली चुनौतियों व अपनी असफलता को अपनी सत्ता या व्यक्तिगत हैसियत पर होने वाले प्रहार के रूप में न देखें, बल्कि ऐसी चुनौतियों के रूप में स्वीकार करें जिनपर अभी आपको विचार करना है, जिन्हें सुलझाने का प्रयत्न करना है।" – जॉन होल्ट



बच्चे असफल कैसे होते हैं

लेखक : जॉन होल्ट

प्रकाशक : एकलव्य प्रकाशन

परिचय

यह किताब एक शिक्षक के रूप में लेखक के अनुभवों पर आधारित पत्रों का संकलन है, इसलिए इस किताब को पढ़ना ऐसा है, मानो अपनी यात्रा के समानान्तर एक दूसरी यात्रा का हिस्सा बनना। चूँकि लेखक ने मुख्य रूप से गणित के शिक्षक के रूप में अपने अनुभवों को दर्ज किया है, इसलिए अन्य विषयों की तुलना में गणित की शिक्षण विधियों की किताब में बहुलता है। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने दूसरे पहलुओं, जैसे– स्कूल के वातावरण, बच्चों का व्यवहार / स्वभाव, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, बौद्धिक क्षमता, शिक्षक की भूमिका, आदि विषयों पर अपने तर्कसम्मत विचार प्रस्तुत किए हैं। लेखक का मत है कि विद्यार्थी की असफलता के लिए परिवार की पृष्ठभूमि और बच्चे का नर्वस सिस्टम ज़िम्मेदार नहीं होते हैं। वे कहते हैं, "शिक्षण पद्धतियाँ ग़लत हो सकती हैं, विद्यार्थी नहीं।" यानी, दूसरे सारे घटकों के कारण बच्चे के सीखने पर नकारात्मक प्रभावों को काफ़ी सीमित किया जा सकता है, यदि बच्चे और शिक्षक के बीच जो भी हो रहा हो, उसे सही दिशा में ले जाया जाए। यह किताब मुख्य रूप से चार हिस्सों में बँटी ज़रूर है, लेकिन इनके अन्तर्गत लिखी बातें आवश्यक रूप से इन शीर्षकों में बँधी न होकर इनके अन्तर्सम्बन्धों के

बारे में भी हैं। ये चार हिस्से हैं : 'पैंतरेबाज़ी' (बच्चों द्वारा कक्षा में), 'भय और असफलता', 'वास्तविक ज्ञान' और 'स्कूल असफल कैसे होते हैं'। निम्न उपशीर्षकों के आधार पर मैंने किताब की बातों, उनसे मिली सीख और अपने अनुभवों को सम्मिलित रूप में यहाँ साझा किया है।

कक्षा में बच्चे

"हर कक्षा में विविध बौद्धिक क्षमताओं वाले बच्चे होते हैं, लेकिन ये मानना पड़ेगा कि मेधा का यह अन्तर जन्मजात नहीं ही होता है। कुछ बच्चे कुछ ख़ास परिस्थितियों (गतिविधियों) में अधिक कुशल (दक्ष) होते हैं। जैसे, मेरी कक्षा में कुछ बच्चे ऐसे हैं जो अंकों की गणित के बारे में काफ़ी हाज़िरजवाब हैं, लेकिन काग़ज़ को मोड़कर कुछ ख़ास तरह की आकृतियों के निर्माण में वो हर चरण पर मदद माँगते हैं। ज़ाहिर है कि कुछ बच्चे इसके उलट भी हैं। इसका मतलब तथाकथित 'मस्तिष्क दोष' का नाम देकर कुछ विशेष बच्चों को 'बुद्धू' कहकर वर्गीकृत करना उचित नहीं होगा।" होल्ट की कक्षा की एमली को मैं अपनी कक्षा की टीना की तरह देखता हूँ जो हमेशा सही होना चाहती है। भूल की कल्पना तक उसे स्वीकार नहीं है। दूसरे उसकी ग़लतियाँ निकालें तो वह चिढ़ जाती है। वह अपने द्वारा दिए गए किसी ग़लत जवाब पर दोबारा सोचना भी नहीं चाहती है। इसके बजाय उसे नया सवाल चाहिए। ये आत्मरक्षा की अलग-अलग रणनीतियाँ हैं। हर बच्चे के पास आत्मरक्षा की अपनी एक रणनीति हो सकती है। एक ही कक्षा सभी बच्चों को एक जैसी नहीं लगती है। हो सकता है कि कुछ बच्चों का मन लगे और बाक़ी के लिए यह उबाऊ और भ्रमित करने वाली हो। ऐसे में बच्चे का पलायन कक्षा से कब हो जाएगा, पता ही नहीं चलता, हालाँकि बच्चा शारीरिक रूप से वहाँ ही रहता है। ऐसे में बच्चे की रुचि को पहचानना ज़रूरी हो जाता है। कई बार कक्षा में एक दूसरे की शिकायतें ख़ुद को अच्छा साबित करने के लिए भी होती हैं, जो कक्षा प्रबन्धन में बड़ी चुनौती प्रस्तुत करती हैं। ऐसी परिस्थिति में कुछ तरीक़े, जैसे— लगातार बातचीत के ज़रिए एक दूसरे की असहजता पर बात करना, ऐसे नियम बनाना जिनमें उनकी श्रद्धा हो अर्थात भय की बजाय ऐसा व्यवस्था तंत्र बनाना जो सहयोग पर आधारित हो, आदि कारगर हो सकते हैं।

तथाकथित 'मस्तिष्क दोष' का नाम देकर कुछ विशेष बच्चों को 'बुद्धू' कहकर वर्गीकृत करना उचित नहीं होगा।

ग़लत उत्तर ज़रूरी

सिर्फ़ सही उत्तर ही पर्याप्त नहीं हैं। उसके स्पष्टीकरण के ज़रिए यह भी पता किया जाना चाहिए कि समझ कितनी विकसित हुई है, क्योंकि बच्चे के सीखने का उद्देश्य यह होता है कि वह किसी समस्या को हल करने के लिए टाल-मटोल व अप्रोचेबल रणनीतियाँ नहीं, बल्कि तर्कयुक्त मौलिक सोच का इस्तेमाल करे। वह किसी भी उत्तर के सही या ग़लत होने की चिन्ता किए बग़ैर जवाब दे, क्योंकि ग़लत उत्तर भी समझ विकसित करने में उतनी ही मदद करता है, जितना सही उत्तर। मैं अपनी कक्षा में देखता हूँ कि जैसे ही बच्चों को पता चलता है कि उनके द्वारा बताया गया उत्तर सही नहीं है तो वे बाक़ी सम्भावनाओं पर विचार करने लगते हैं और वापस कई बार अपनी ही ग़लती पर सोचते हैं। इसलिए कक्षा में ग़लत उत्तरों को भी उतना ही आमंत्रित करते हुए रखवाना चाहिए, अन्यथा यह छन्नी कुछ बच्चों को प्रयास करने से ही

> “हर कक्षा में विविध बौद्धिक क्षमताओं वाले बच्चे होते हैं, लेकिन ये तो मानना पड़ेगा कि मेधा का यह अन्तर जन्मजात नहीं ही होता है।”

रोक देगी और उन कारणों तक भी नहीं पहुँचने देगी जो ग़लत उत्तरों के लिए ज़िम्मेदार हैं। कई बार देखा गया है कि ग़लत उत्तर भी उतना ही तर्कसंगत होता है, जितना सही। मसलन, मैंने अपनी कक्षा में एक दिन पूछा, “9 गिलासों में से प्रत्येक को आधा-आधा भरने के लिए कितने गिलास पानी चाहिए?” शुभम ने जवाब दिया, “इसके लिए एक जग पानी चाहिए।” अब उसके उत्तर को नकारा नहीं जा सकता था न!

सफलता और असफलता

लेखक कहते हैं, “सफलता और असफलता, ये केवल वयस्क विचार हैं, बच्चे के लिए तो आनन्द की मात्रा और काम के प्रति उत्सुकता ही मूल है। छोटा बच्चा साइकिल चलाते समय गिरने के बाद कभी नहीं कहता कि वह असफल हो गया, न ही वह अपने आगे के प्रयास करना बन्द करता है। उसके प्रयासों के परिणाम भी वयस्कों के अनुमोदन या आलोचना के दायरे से बहुधा बाहर ही होते हैं। असफलता की अपनी गरिमा है जिसका स्वरूप सकारात्मक है न कि लज्जाजनक।” अकसर ‘सफलता’ को कक्षा या पड़ोस के दूसरे बच्चों की सापेक्षिक उपलब्धियों के रूप में देखा जाता है। कई बार उदाहरण के साथ बच्चों को सफलता के नैतिक पाठ भी सुनाए जाते हैं जबकि उनको इससे कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता। और पड़े भी क्यों? जब वे स्कूल के कुछ उबाऊ, भ्रमपूर्ण तरीक़ों और विधियों के अलावा (जो भय के वातावरण में परोसी जाती हैं) बाक़ी जीवन के दूसरे कामों में आनन्द और सफलता दोनों ही प्राप्त कर रहे होते हैं।

भय, दुश्चिन्ता और तनाव

भय बच्चों को कुछ न समझ आने पर भी सवाल करने से रोकता है, जिससे ख़राब छात्र और ख़राब होते चले जाते हैं। कक्षा में सीखने के दौरान ग़लती कर लेना एक सहज प्रक्रिया होनी चाहिए, लेकिन सोचने वाली बात है कि ‘ग़लती हो जाएगी’ का भय, ग़लती हो जाने के बाद के भय से ज़्यादा कष्टकारक होता है। भय को काम करवाने का तरीक़ा समझा जाता है जबकि होता इसके उलट है। लेखक संगीत सीखने के अपने अनुभव से कहते हैं, “दिमाग़ में एक साथ नई चीज़ों को उँड़ेलने से भय और चिन्ता आते हैं और इससे जनित तनाव दिमाग़ की ग्रहण क्षमता को कहीं-न-कहीं कम कर देता है।” यह तथ्य काफ़ी हद तक वैज्ञानिक रूप से सिद्ध और मानव व्यवहार से जुड़ा है। मस्तिष्क दूसरे अंगों की तरह ही होता है, जिसका वर्तमान उपयोग तय करता है कि वह भविष्य में किस तरह से काम कर पाएगा। यानी, लगातार इस तरह के वातावरण में रहने से मस्तिष्क की कार्य क्षमता नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है।

शिक्षक के लिए

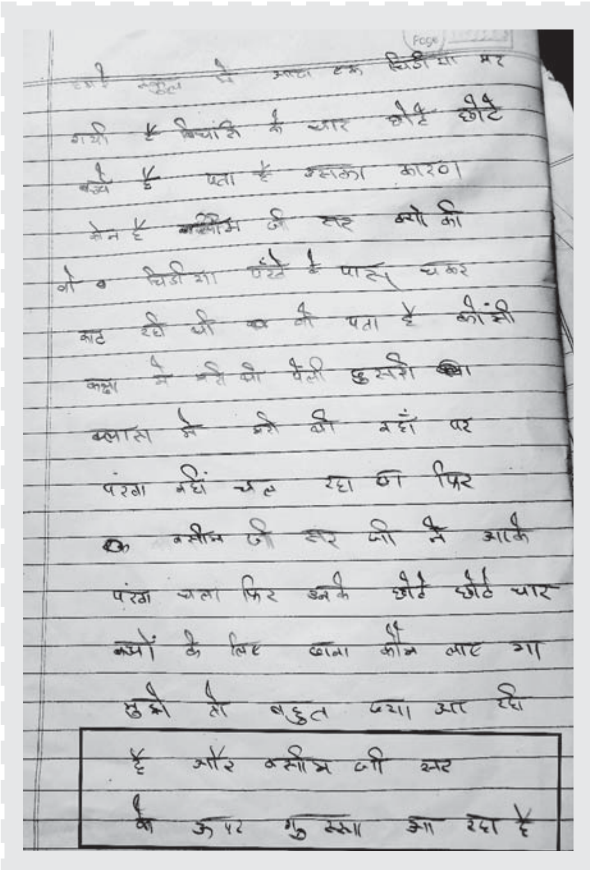
शिक्षक को ख़ुद को एक सुगमकर्ता के रूप में देखना चाहिए। कई बार शिक्षक साथी सोचते हैं कि मेरी और बच्चों की रुचियाँ समान हैं, और हमारा काम एक गरिमापूर्ण लक्ष्य के लिए इनका मार्गदर्शन करना है। सच यह है कि ऐसा कोई लक्ष्य बच्चों को दिखाई नहीं देता और इस तरह से हम अपनी इच्छाएँ बच्चों पर थोप रहे होते हैं। इससे स्कूल उनके लिए एक ऐसे क़ैदख़ाने की तरह बनता चला जाता है, जहाँ छुट्टी की घण्टी लगने के बाद उनको अगले दिन तक के लिए मुक्ति मिल जाती है। इतना ही नहीं, कई बार हमारी शिकायत होती है कि बच्चे कक्षा में अच्छा काम नहीं करते या सोचने और समस्या समाधान में ग़लत रणनीतियाँ अपनाते हैं। लेकिन इन सबके स्रोत भी हम शिक्षक लोग ही होते हैं, क्योंकि अकसर हम लोग एक न्यायाधीश की तरह ग़लत-सही का फ़ैसला सुनाते या अंक देते

हैं। हम आज्ञा-प्रेषक की तरह व्यवहार करते हैं। यही कारण है कि कई बार बच्चे स्कूल से अच्छा घर में सीखते हैं। बच्चे अगर कुछ समझ नहीं पा रहे हैं तो उसमें ग़लती केवल बच्चे की नहीं है। कई बार शिक्षक यह मानकर चलते हैं कि यह तो सरल और स्वाभाविक है, लेकिन वह सरल हो, ऐसा बच्चे के लिए नहीं हो सकता। इसलिए किसी विषय या विचार का परिचय इस तरह से शुरू करना चाहिए कि वह बच्चे के लिए बिलकुल नया है। "ऐसा सोचना, कि बच्चा अगर किसी निरर्थक (कम-से-कम उसके लिए) काम या प्रक्रिया को बार-बार दोहरा लेगा तो उसके लिए सार्थक हो जाएगा, ठीक उसी तरह है जैसे यह समझना कि तोते को कुछ भी रटाने से वह उसका अर्थ निकाल लेगा।" मेरे स्कूल में मॉर्निंग असेम्बली के समय ज़्यादातर बच्चों से महीनों के नाम बुलवाए जाते हैं। एक दिन मैंने जब कक्षा में महीनों में दिनों की संख्या व उनके क्रम पर बात की तो ज़्यादातर बच्चों के उत्तर ग़लत थे। लेकिन इसका मतलब ये भी नहीं कि कक्षा में ऐसे ही सवाल पूछे जाएँ, जिनके जवाब बच्चे न जानते हों। लेखक ने चर्चिल के हवाले से व्यंग्य किया है, "शिक्षकों के सवाल ये जानने के लिए थोड़े होते हैं कि आप क्या जानते हैं, वो होते ही इस बात का ढिंढोरा पीटने के लिए हैं कि आप क्या नहीं जानते हैं।"

असफलता की अपनी गरिमा है जिसका स्वरूप सकारात्मक है न कि लज्जाजनक।

"किसी शिक्षक के मन में ऐसा भाव भी आ सकता है कि मैं कुछ ऐसा जानता हूँ, जो तुम लोग नहीं जानते और मैं अब वही तुम लोगों को सिखाने जा रहा हूँ। शिक्षक अगर 'प्रतिभाशाली' है तो यह विचार और प्रबल होता है।" शिक्षक का यह दृष्टिकोण बच्चों के सीखने में सबसे बड़ी बाधा है। शिक्षक कक्षा में सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, तार्किक, न्यायप्रिय और हमेशा सही रहने की छवि बनाते हुए पाए जाते हैं। मेरी कक्षा में बच्चे अकसर यह कहते हुए पाए जाते थे कि सर, आप टीचर हैं, आपको सब आता है! मैं कई बार सोचता हूँ कि यह विचार बच्चों के अन्दर आया कैसे? इसको तोड़ने के लिए मैं उनसे बात करता कि देखो! मैं तुम्हारी भाषा अभी भी अच्छे-से नहीं बोल पा रहा हूँ, जिसको तुम रोज़ मुझे सिखाने की कोशिश करते हो। उन्हें यह उदाहरण भी दिया कि कल कैरम बोर्ड में मुझसे अच्छा तो तुम लोग खेल रहे थे। अब हाल ये है कि जैसे ही एक बच्चा ऐसा कहता है, दूसरा उसको समझा देता है कि मैं किन-किन चीज़ों में उनसे पीछे हूँ। यहाँ मूल बात बच्चों के प्रति ईमानदार रहने की है।

मुझे अपने स्कूल का एक वाक़िया याद है जब एक शिक्षक ने शोरग़ुल का हवाला देकर कक्षा के सारे बच्चों को एक कष्टप्रद मुद्रा में खड़े होने के लिए कह दिया था। मैंने उस चार साल की बच्ची को बाक़ी बच्चों से अलग किया, जो अपनी बड़ी बहन के साथ स्कूल आई थी। वह काफ़ी डर गई थी और ख़ुद को उस मुद्रा में व्यवस्थित करने की कोशिश कर रही थी। थोड़ी देर बाद वे शिक्षक उसी कक्षा को पढ़ा रहे थे। सारे बच्चे बड़ी शान्ति के साथ दिए गए काम में तल्लीन थे। इस किताब को पढ़ते हुए यह घटना याद आई क्योंकि इसमें लेखक कहते हैं, "शिक्षक सोचते हैं कि बच्चे उनकी मर्ज़ी से ही सबकुछ करते चले जाएँ, पर साथ ही यह एहसास भी न होने दें कि सबकुछ वे डर की वजह से कर रहे हैं।" यानी, शिक्षक अपनी सहृदय (स्नेही) व्यक्ति की छवि भी बरक़रार रखना चाहते हैं। शिक्षकों के सन्दर्भ में एक और बात यह भी है कि क्या कभी स्कूल में ऐसे अवसर (माहौल) दिए जाते हैं, जब बच्चे स्कूल या शिक्षक के प्रति मन की भावना या अपनी घृणा, क्रोध व अनिच्छा को व्यक्त कर सकें? क्या शिक्षक ये स्वीकार कर सकेंगे? अगले पेज पर दिए गए चित्र की लिखावट मेरी



कक्षा की एक छात्रा की है जिसमें वह अपने एक शिक्षक के प्रति एक ख़ास घटना को लेकर ग़ुस्सा है। लेकिन मेरे कहने के बाद भी उसने यह लिखावट सम्बन्धित शिक्षक को नहीं दिखाई।

बच्चे और वयस्क

बच्चों के प्रति वयस्कों की धारणाएँ भी कई बार उनके कार्यकलापों को तय करती हैं। जैसे, कई बार किसी बच्चे को अगर ‘बुद्धू’ कहा जाए तो कुछ समय बाद उसको भी लगने लगता है कि शायद कुछ तो उसमें नहीं है, जो बाक़ी बच्चों में है। अत्यन्त सावधान अभिभावकों के बच्चे कुछ नया करने से घबराते हैं या कई बार अति-आत्मविश्वास में (‘समझ क्या रखा है, मैं कुछ भी कर सकता हूँ’, के भाव में) ज़रूरत से ज़्यादा जोख़िम उठाते हैं। लेखक ने उदाहरण दिया है, “एक प्ले गार्डन में जब तक अभिभावकों को बच्चों के साथ अन्दर जाने दिया गया, तब तक बच्चों के साथ दुर्घटनाएँ ज़्यादा होती थीं। निष्कर्ष ये निकाला गया कि अगर बच्चों को स्वयं निर्णय लेने दिया जाए तो वे साहसिक कार्य करने में सावधानी बरतते हैं।” मुझे लगता है कि कक्षा में बच्चे की अनावश्यक तारीफ़ (जिसको वह भाँप लेता है) या किसी भी तरह का निरुत्साह, दोनों ही उसको मानसिक और व्यवहारिक स्तर पर प्रभावित करते हैं। बच्चे आमतौर पर वयस्कों की दुनिया में काफ़ी रुचि लेते हैं, लेकिन हम वयस्क हमेशा एक परिधि में ही उनको रखते हैं। इसलिए हमारे वयस्कतापूर्ण व्यवहार के प्रति उनकी नज़र शंका से भरी होती है और कई बार हमारे प्यार भरे शब्दों से भी उन्हें अरुचि होती है। ज़ाहिर है, ऐसे शब्दों की बजाय उन्हें भी प्रशंसा, आदर और सम्मान की ज़रूरत होती है।

पाठ्यक्रम और स्कूल

अगर बच्चा कुछ सीखना चाहता है तो वह उसे याद भी रखता है और उस ज्ञान का उपयोग भी वह करता है। परन्तु जो कुछ भी दूसरों को ख़ुश (शान्त) रखने के लिए सीखता है, जब सामने वाले को ख़ुश (शान्त) रखने की ज़रूरत ख़त्म हो जाती है तो बच्चा उस ज्ञान को भूल जाता है। यही कारण है कि बच्चे स्कूल में सीखी अधिकांश बातें भूल जाते हैं। पाठ्यक्रम बच्चों की वास्तविक ज़रूरतों व सामाजिक आवश्यकताओं पर निर्भर होना चाहिए। होता ये है कि अलग-अलग क्षेत्रों के विशेषज्ञ अपने विषयों को महत्त्वपूर्ण मानते हुए पाठ्यक्रम का निर्धारण करते हैं। कोई भी विषय दूसरे से महत्त्वपूर्ण नहीं होता, महत्त्वपूर्ण केवल सीखने की प्रक्रिया होती है। कई बार भविष्य (दो-तीन दशक बाद) की ज़रूरतों का पता भी नहीं होता। तो क्यों न ऐसे लोग तैयार किए जाएँ जो सीखने में विश्वास करें और ज़रूरत पड़ने पर कोई भी विषय सीखने के लिए तैयार

रहें। लेकिन तमाम पाठ्यक्रम और स्कूल 'उत्पादक' छात्रों को उत्साहित करते हैं और 'विचारक' छात्रों को हतोत्साहित।

> "दिमाग़ में एक साथ नई चीज़ों को उँड़ेलने से भय और चिन्ता आते हैं और इससे जनित तनाव दिमाग़ की ग्रहण क्षमता को कहीं-न-कहीं कम कर देता है।"

बच्चों की रणनीतियाँ

कक्षा में बच्चे आत्मरक्षा में अनेक रणनीतियाँ अपनाते हैं। इसमें वे 'शिक्षक से उत्तर निकलवाने की कोशिश' से लेकर 'तुक्का लगाओ', 'शिक्षक की प्रतिक्रिया देखो', 'चेहरे के भाव देखकर उत्तर बदलना' जैसी तरकीबें इस्तेमाल करते हैं। मेरी कक्षा में एक बार घटाने के इबारती सवालों पर अभ्यास के दौरान हंसिका ने एक सवाल के जवाब में 48 उत्तर दिया (सही जवाब 49 था)। मैंने उससे कहा, "तुम दोबारा कोशिश करो, 'थोड़ा ग़लती है'।" उसने दोबारा कोशिश की और सही उत्तर तक पहुँच गई। आगे जब भी मैंने उसको उसके उत्तर पर पुनर्विचार करने के लिए कहा तो वह पूछती, "थोड़ा ग़लती है क्या?" अगर मेरा जवाब 'हाँ' होता तो वह अपने जवाब में से एक कम या ज़्यादा करके जवाब देती। कुछ दिनों बाद मैंने उसकी यह रणनीति समझ ली और अब मेरा जवाब होता, "मुझे नहीं पता कितना ग़लत है।" इसी तरह दूसरे बच्चों के पास भी अपनी-अपनी रणनीतियाँ हैं। मसलन, समझ को नकारना या समझ की चाह न होना या कुछ रिस्पॉन्स न देना, आदि, क्योंकि चुप्पी, ग़लत उत्तर देने से सुरक्षित रखती है। ये रणनीतियाँ भय से पैदा होती हैं जिसमें वे आत्मरक्षा का सहारा लेते हैं। फिर ये रणनीतियाँ उनकी आदत बन जाती हैं। कई बार शिक्षक जान-बूझकर भय का इस्तेमाल नहीं करते, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से वह विद्यमान होता है। जैसे, मुझे ये जानने में काफ़ी समय लगा कि कुछ बच्चे किसी सवाल पर अपना जवाब इसलिए भी नहीं देते थे क्योंकि उन्हें अपने सहपाठियों द्वारा उपहास का भय रहता था। जब बच्चा धोखे से या किसी दूसरे तरीक़े से उत्तर चुराने की कोशिश करता है तो इसके दो नुक़सान हैं– एक सीखना नहीं होता और दूसरा, उसके दिमाग़ में बैठ जाता है कि ये सब चीज़ें स्कूल में की जा सकती हैं, इसलिए सीखने की ज़रूरत ही नहीं है। कमज़ोर या अयोग्य बने रहना भी एक रणनीति है, क्योंकि ऐसे में उनसे ज़्यादा अपेक्षा नहीं की जाती और वे सुरक्षित महसूस करते हैं। ऐसे में उन्हें उम्मीद के टूटने के बाद का भय नहीं सताता। यही कारण है कि कई बार माता-पिता की ऊँची अपेक्षाएँ भी बच्चे द्वारा असफलता का रास्ता चुनने का कारण बनती हैं।

वास्तविक ज्ञान

लेखक बच्चों के वास्तविक ज्ञान या उनकी अवधारणात्मक समझ को परखने के कुछ तरीक़ों पर बात करते हैं। जैसे, किसी अवधारणा को समझने के बाद अगर बच्चा उसे अपने शब्दों में बताता है, उसका उदाहरण देता है, उसको उपयोग में लाता है, उसके परिणाम का अनुमान लगाता है और उसका विपरीत कर सकता है, तो इसका अर्थ होगा कि बच्चे में उस अवधारणा की अच्छी समझ है। मैंने अपने अनुभव से भी देखा है कि कई बार बच्चे यांत्रिक विधियों के ज़रिए उत्तर तक पहुँच जाते हैं। ऐसे में अलग-अलग सवालों और चुनौतियों पर अभ्यास ज़रूरी है। कई बार बच्चे में भाषा की अस्पष्टता या पूर्वज्ञान की वजह से भ्रम की स्थिति पैदा हो जाती है और वे बार-बार ग़लती दोहराते हैं। ऐसे में प्रतिक्रिया के कारण तक पहुँचे बिना केवल उत्तर थोपना अवधारणात्मक समझ को किनारे कर देता है। लेखक उस पुरानी धारणा से आगे बढ़ने का सुझाव देते हैं, जिसमें कहा जाता था कि बच्चों से ऐसे सवाल पूछो, जिनका जवाब कुछ कहने की बजाय कुछ करने से मिलता हो। लेखक का मानना है कि ऐसे में बच्चे को यह जानने के लिए, कि उसका प्रयास सही दिशा में है या ग़लत में, हमेशा निरीक्षक के अनुमोदन पर निर्भर रहना पड़ेगा। इसकी बजाय

लेखक ने सुझाव दिया है कि बच्चे को कुछ ऐसा करने को दिया जाए कि वह अपने किए गए काम की सत्यता को ख़ुद ही जाँचे। ये बात मुझे काफ़ी प्रभावी लगी क्योंकि ऐसे में न केवल शिक्षक की न्यायाधीश की भूमिका कम हो जाएगी, बल्कि बच्चे जब स्वयं अपने प्रयास का मूल्यांकन करेंगे तो उनमें आत्मविश्वास भी आएगा। चित्र के अलग-अलग हिस्सों को जोड़कर एक पूरा चित्र बनाना या किसी इबारती सवाल की ठोस वस्तुओं से मॉडलिंग करना, इस तरह की कुछ गतिविधियाँ हो सकती हैं। जैसे मैंने कक्षा 4 और 5 में एक बार पूछा था, "कक्षा के दो छात्रों के पास बराबर-बराबर पेन थे। पहले ने दूसरे छात्र को दो पेन दे दिए। दूसरे छात्र के पास पहले से तीन गुना ज़्यादा पेन हो गए। शुरू में उन दोनों के पास कितने पेन रहे होंगे?" अब कक्षा में सारी सम्भावनाओं को तलाशने के लिए मैंने दो विद्यार्थियों को खड़ा किया और देखा कि हर बार अलग-अलग पेनों की संख्या के साथ प्रश्न की शर्त के अनुसार अपने उत्तरों की सत्यता को वे ख़ुद जाँच पा रहे थे। बीच-बीच में मुझे शर्त याद दिलानी पड़ रही थी। इससे उन्हें ये भी समझ आ रहा था कि प्रश्न की भाषा उत्तर तक पहुँचने में कितनी ज़रूरी है। इस दौरान मैंने भी सीखा कि बच्चों को सही उत्तर तक पहुँचाने की शिक्षक की जल्दबाज़ी, समझ की प्रक्रिया को विकसित होने देने में बाधक होती है। लेकिन उपर्युक्त प्रक्रिया के दौरान कुछ ऐसे बच्चे भी थे, जो एक-दो प्रयास के बाद बिलकुल भी रुचि नहीं ले रहे थे। वहीं कुछ बच्चे इस कदर सोचने लगे थे कि दूसरे का बीच में बोलना भी उनको ग़ुस्सा कर रहा था। इस किताब को पढ़ने के बाद अब मैं इन सारी बातों को जोड़ पा रहा था। लेखक ने बच्चों को दो तरह के दृष्टिकोण वाले बच्चों में बाँटा है– "एक, वे जो समस्या-केन्द्रित होते हैं, जो ये मानते हैं कि दी गई समस्या एक ऐसी परिस्थिति है जिसका एक भाग छिपा हुआ है और ऐसी परिस्थिति को अपने दिमाग़ में रचकर छुपे हुए भाग को ढूँढ़ा जा सकता है। दूसरे, वे बच्चे होते हैं जो उत्तर-केन्द्रित होते हैं। उनके लिए सवाल एक घोषणा है, जिसका जवाब दूर देश में छिपा हुआ है। कई बार उस दूर देश से वो कुछ लाते हैं और शिक्षक को तुरन्त दिखाकर उसकी पुष्टि करना चाहते हैं।" ऐसे में अगर शिक्षक ख़ुद ही 'उत्तर-केन्द्रित' दृष्टिकोण वाला व्यक्ति हो तो स्थिति और ख़राब हो जाती है। लेखक ने किताब में कई जगह सीखने के व्यवहारवादी तरीक़े को आलोचनात्मक नज़रिए से देखा है। जैसे, यदि क्लासिकल कन्डीशनिंग (नकारात्मक और सकारात्मक सम्बलन) के माध्यम से बच्चे के व्यवहार को बदलने की कोशिश की जाती है तो उसकी वास्तविक बुद्धिमत्ता और सोचने की क्षमता का उपयोग नहीं हो पाता है। नतीजतन, बच्चा इन्हीं उद्दीपनों के लिए काम करना शुरू कर देता है, और 'सीखने का आनन्द' पीछे रह जाता है। मैं इसे ऐसे सोचता हूँ कि कुछ छात्रों को शुरुआती चरण में प्रोत्साहन, जिसमें उसकी जेन्युइन तारीफ़ करना शामिल है, कई बार 'सीखने के आनन्द' तक ले जाता है।

"ऐसा सोचना, कि बच्चा अगर किसी निरर्थक (कम-से-कम उसके लिए) काम या प्रक्रिया को बार-बार दोहरा लेगा तो उसके लिए सार्थक हो जाएगा, ठीक उसी तरह है जैसे यह समझना कि तोते को कुछ भी रटाने से वह उसका अर्थ निकाल लेगा।"

स्व-मूल्यांकन

गणित की कक्षा में काम करने के दौरान मुझे ऐसा लगता रहा है कि आगमन (inductive) तर्क, जिसमें बच्चे अभ्यासों के ज़रिए नियम (सूत्र) गढ़ने तक की प्रक्रिया स्वयं कर रहे होते हैं, बच्चे की सीखने की प्रक्रिया और ख़ुद की समझ विकसित करने में निगमनात्मक (deductive) तर्क, जो कि शिक्षक-केन्द्रित हो जाता है, की बजाय ज़्यादा सहायक होते हैं। ये निजी सामान्यीकरण बच्चे की संज्ञानात्मक क्षमता से भी सीधे जुड़े होते हैं। ख़ुद को तटस्थ होकर बौद्धिक रूप से देखने की क्षमता (स्व-मूल्यांकन) भय के वातावरण में ख़त्म हो जाती है। इस किताब के लेखक 'प्रोग्राम्ड

लर्निंग' के पक्ष में नहीं हैं, जिसमें माना जाता है कि बच्चे को दिए गए लगातार फ़ीडबैक से उसके व्यवहार में मनचाहा परिवर्तन लाया जा सकता है। लेखक का मानना है, "इससे बच्चे की शिक्षक की प्रतिक्रिया पर निर्भरता बढ़ जाएगी। इसलिए बच्चे की सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक का हस्तक्षेप तार्किक और सीमित होना चाहिए, ताकि ऐसे बच्चे तैयार हों जो अपने ही परिणामों को परखने के लिए किसी दूसरे की प्रतिक्रिया पर निर्भर न रहें।" पर सवाल ये भी है कि क्या बच्चे ख़ुद तय कर पाते हैं कि उन्हें समझ आया या नहीं, तो हमारी अपेक्षा ये कैसे हो सकती है कि वे हमें बताएँ कि फलाँ अवधारणा उन्हें समझ आई या नहीं? इसके जवाब में मुझे लगता है कि कुछ चुनौतियों को देने के बाद बिना हस्तक्षेप के बच्चे का अवलोकन ज़रूरी है (परीक्षा भी इसी तरह का एक साधन है)। साथ ही धीरे-धीरे बच्चे के साथ डायलॉग (क्यों, कैसे) के ज़रिए उसमें स्व-मूल्यांकन का कौशल विकसित करना भी उतना ही ज़रूरी है।

परीक्षाएँ

समकालीन परीक्षा के स्वरूप पर जॉन होल्ट ने अपनी असहमति जताई है। उनके मुताबिक़, "एक स्थापित पैटर्न पर आधारित परीक्षा, सीखने के रटन्त तरीक़े को बढ़ावा देती है। कई बार तो शिक्षक पढ़ाने की जगह एक अच्छा परीक्षार्थी तैयार करने में ज़्यादा तल्लीन रहते हैं।" प्राथमिक कक्षाओं के आगे की भी परीक्षाओं को लेखक केवल छलावा मानते हैं, क्योंकि परीक्षा की पूर्व-घोषणा, आने वाले पाठों पर चर्चा और पूछे जाने वाले सवालों पर अभ्यास, ये सब 'पहले बताओ, फिर परीक्षा लो' की प्रक्रिया पर आधारित हैं। इससे सबसे ज़्यादा नुक़सान विद्यार्थियों का होता है, क्योंकि यह अप्रोच सोचने-समझने की क्षमता विकसित करने की बजाय केवल तथ्यों और विधियों तक सीमित (फ़ोकस्ड) रहता है।

"शिक्षक कक्षा में सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, तार्किक, न्यायप्रिय और हमेशा सही रहने की छवि बनाते हुए पाए जाते हैं।"

गणित सिखाना

होल्ट लिखते हैं कि गणित सिखाना जितना सरल समझा जाता है, उतना है नहीं। लेखक ने मुख्य रूप से अपनी कक्षा में क्यूज़ीनायर छड़ों (Cuisenaire Rods – अलग-अलग रंगों और लम्बाई वाली दस तरह की छड़ों का समूह) को मुख्य ठोस सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया। इनका प्रयोग भिन्न की अवधारणा, अभाज्य संख्याओं, जोड़ और गणित की अन्य अवधारणाओं (जैसे– भाग, घटाव) को समझने के लिए किया गया। हालाँकि कुछ दिनों तक उन्होंने डीन्स ब्लॉक्स का भी प्रयोग किया, लेकिन ये उनकी कक्षा में बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। लेखक ने गणितीय अवधारणाओं को वास्तविकता से जोड़ने पर ज़ोर दिया है। ज़्यादातर बच्चों को नाप-तौल (दूरी, तराजू, घड़ी, थर्मामीटर) के माध्यम से संख्या परिचय कराने से वो ज़्यादा रुचि से सीख रहे थे। इसी तरह वे स्वयं के शरीर, अर्थात उनका वज़न, ऊँचाई या वो कितना कूद सकते हैं, आदि के बारे में काफ़ी उत्सुक रहते हैं। शारीरिक सन्दर्भ के इस तरीक़े को मैंने अपनी कक्षा में गणित सिखाने में प्रयोग किया। इसके लिए मैंने बच्चों द्वारा ही एक दूसरे की लम्बाई व वज़न नापकर एक चार्ट तैयार कराया और कक्षा में लगा दिया। इस दौरान मैंने पाया कि बच्चे दो और तीन अंकों की संख्या की तुलना और आँकड़ों के प्रबन्धन जैसे गणितीय कौशलों पर स्वतः सोच रहे थे। इस दौरान मैं उनसे कुछ सवाल भी पूछता। जैसे, कितने बच्चे आशीष की तुलना में अधिक लम्बे हैं, आदि।

होल्ट के द्वारा बच्चों के साथ कक्षा में किए गए कई प्रश्नों के उदाहरण और उनपर बच्चों के रिस्पॉन्स, मेरे लिए गणित में बच्चों की समझ की पड़ताल करने की तमाम विधियों पर विचार

(या अभ्यास) करने के तरीक़े सुझाते हैं। जैसे, जब होल्ट ने कक्षा में पूछा कि एक छड़ के कितने एक-तिहाई टुकड़े किए जा सकते हैं, तो कुछ बच्चों का जवाब आया कि ये बात छड़ की लम्बाई पर निर्भर करती है। जवाब सुनने में हमारे लिए भले ही हास्यास्पद लगे, लेकिन बच्चों द्वारा ऐसे जवाब पूरी गम्भीरता से दिए जाते हैं। ये जवाब बताते हैं कि विधियों या तथ्यों के साथ-साथ समझ पर काम करने से ही गणित शिक्षण के वास्तविक उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं। इसी तरह का एक और उदाहरण लेखक ने दिया है। “जब वह कक्षा में बच्चों से पूछते हैं कि ऐसी दो रेखाएँ खींचो जहाँ एक रेखा दूसरी की 5 / 7 हो, तो सारे बच्चों ने एक 7 सेमी और उसके बग़ल में दूसरी 5 सेमी की रेखा खींच दी। पुनः जब लेखक ने पूछा कि एक ऐसी रेखा खींचो जो दूसरे की 5 / 17 हो छात्रों का जवाब था कि कॉपी का पेज इतना लम्बा नहीं है कि उसमें 17 सेमी की लाइन खींची जा सके।” ऐसे कई जवाब मुझे मेरी गणित की कक्षा में भी सुनने को मिलते हैं। उदाहरण के तौर पर, एक दिन मैंने पाँचवीं कक्षा में एक सवाल पूछा और उसको चित्र के रूप में प्रदर्शित किया। सवाल था, “एक बन्दर पहली बार में 2 मीटर की छलाँग लगाता है और उसके अगली बार 1 मीटर की छलाँग लगाता है उसे 18 मीटर दूर जाने के लिए कितनी बार छलाँग लगानी पड़ेगी?” बच्चों के पास इसके कई जवाब थे, जिनको मैंने ब्लैकबोर्ड पर ही लिख दिया। जैसे ही मैं उनसे उत्तर की व्याख्या बताने को कहता तो कई बच्चे अपने जवाब बदल देते थे। उनमें से कई तो मुझसे जवाब निकलवाने की कोशिश कर रहे थे। कुछ उत्तर (जैसे— 30 बार, 27 बार, आदि) ऐसे थे, मानो सवाल को समझा ही न गया हो। मैंने फिर उनसे सवाल को दोहराकर मुझसे पूछने को कहा। कुछ बच्चे ऐसे थे, जो सवाल की भाषा को समझ चुके थे। उन्होंने सही उत्तर बताए भी, लेकिन अभी तक मैंने किसी भी उत्तर के सही होने की घोषणा नहीं की थी। अब तक एक बच्ची ने उत्तर तक पहुँचने का अपना तरीक़ा अपनाया। जो लाइन मैंने 18 मीटर की दूरी को दर्शाने के लिए बनाई थी और उसमें शुरुआती दो छलाँगों को प्रदर्शित किया था, उसने वहीं से आगे उसी लाइन पर छलाँगों को क्रमशः दर्शाना शुरू किया। ज़ाहिर है, सही उत्तर तक तो वह नहीं पहुँच पाई लेकिन वह अपने उत्तर को ग़लत माने, इसकी कोई वजह उसे समझ नहीं आ रही थी। इस पूरी प्रक्रिया में सवाल तक पहुँचने की प्रक्रिया और बच्चों द्वारा जवाब खोजने के तरीक़ों की समझ मुझ तक पहुँच रही थी।



कुल मिलाकर, जॉन होल्ट की यह किताब आज भी हम शिक्षकों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। कक्षा में क्या होता है, क्यों बच्चे अपनी पूरी क्षमता के साथ सीख नहीं पाते हैं, और शिक्षक की सीखने-सिखाने में क्या भूमिका है, इन सवालों का गहराई के साथ विश्लेषण करती हुई यह किताब शिक्षकों के लिए महत्त्वपूर्ण निर्देश देती है। इस किताब में व्यक्त समस्याओं, उलझनों और उन्हें हल करने की समझ आज भी हमारे लिए बहुत प्रासंगिक है। एकलव्य से छपी इस किताब का अनुवाद पूर्वा याज्ञिक ने किया है।

अभिषेक द्विवेदी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से भौतिकशास्त्र से स्नातक और परास्नातक किया है। तक़रीबन एक वर्ष से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन टोंक (राजस्थान) में एसोसिएट के रूप में कार्यरत हैं। वे प्राथमिक विद्यालय में गणित विषय में शिक्षण कार्य कर रहे हैं। अभिषेक गणित और विज्ञान विषय की शिक्षण विधियों के अतिरिक्त बच्चों की सामाजिक, आर्थिक एवं भावनात्मक पृष्ठभूमि और कक्षा में उसके प्रभावों को समझने में रूचि रखते है।
सम्पर्क : abhishek.dwivedi@azimpremjifoundation.org





भाषा की तरलता और अनुभव की गहनता से बनी *मिट्टी का इत्र*

अंजना त्रिवेदी



मिट्टी का इत्र

लेखक : दिलीप चिंचालकर

प्रकाशक : जुगनू तक्षशिला की प्रकाशन छाप

ऐसी किताब अरसे बाद मिली, जिसके रस ने भीतर तक भिगो दिया और जिसकी महक का ख़ुमार सौंधी गीली मिट्टी का असर लिए हुए है। यह किताब है *मिट्टी का इत्र* और इसके लेखक हैं दिलीप चिंचालकर। जुगनू प्रकाशन से छपी इस किताब में चित्रकार दिलीप चिंचालकर (1951-2000) ने अपने बचपन और बाद के भी कई अनुभव दर्ज किए हैं। 21 कहानियों से बनी यह किताब कुल 94 पेजों में सिमटी है। यों तो हर बच्चे के जीवन में परिवेश का असर होता है, लेकिन इन अनुभवों को लिखने का जैसा सलीक़ा दिलीपजी ने निभाया है, उससे इस किताब को पढ़ने वाले बच्चों को भी अपने अनुभवों को दर्ज करने की प्रेरणा मिलेगी। इस किताब को पढ़ते हुए आप नीम के पेड़ पर आती-जाती गौरैया की चहलक़दमी देख-सुन सकते हैं, कोयल और कौवों की बातें सुन सकते हैं, नस्टुर्शियम पौधे के बारे में सोच सकते हैं, रात में खुले आसमान में सप्तऋषियों से गपशप कर सकते हैं और उनसे इशारा करके पूछ सकते हैं कि आज बारिश का कोई इरादा तो नहीं है न!

दिलीपजी की इस किताब में मनुष्य से क़ुदरत के सम्बन्धों को बहुत गहराई से देखा गया है। तकनीकी ज़माने में जब क़ुदरत से हमारा रिश्ता ख़त्म होता जा रहा है, ऐसे में यह किताब इन रिश्तों के महत्त्व को उभारती है। किताब के ज़्यादातर लेख इसी विषय पर हैं। लेखक बताते हैं कि जानवरों, पक्षियों, फूलों, पेड़ों, दीमकों, पत्थरों, आदि की दुनिया भी हमारी दुनिया है। हम मनुष्यों की दुनिया में ऐसे खो जाते हैं कि क़ुदरत से हमारा रिश्ता छूट जाता है। क़ुदरत हमें कैसे और क्या सिखाती है, इस विषय पर बहुत-से अनुभव इस किताब में हैं। बारिश आने के क्या-क्या क़ुदरती लक्षण हैं, देखिए, "मैंने बिल्लियों पर ध्यान रखा कि कहीं वे ज़मीन तो नहीं खोद रहीं! कहीं गौरैयाँ धूल में लोट तो नहीं लगा रहीं। चुहियों की तबियत का अन्दाज़ा लेने की कोशिश की। छत पर जाकर देखा कि कहीं वहाँ पड़ी खटिया अकड़ तो नहीं गई। डिब्बे खोलकर देखे कि नमक और गुड़ पसीज तो नहीं गए। क्योंकि कहते हैं कि ये सब तुम्हारे (बारिश के) आने के लक्षण हैं।" इसी तरह क़ुदरत मौसम के

बदलने की चेतावनी कैसे देती है, पशु-पक्षियों की दुनिया से हम क्या सीख सकते हैं, आदि पर लेखक ने बहुत बारीक़ नज़र से विचार किया है। बदलते मौसम की पदचाप को पहचानते हुए दिलीपजी लिखते हैं, "पचास-पचपन साल पहले



की बात है। बारिश के मौसम में मैदान-खेत घास से भर जाते थे। दिवाली आते-आते घास तक पककर पीली-गुलाबी हो जाती थी। गाय-बैल सालभर इसे चाव से खाते थे... फिर इसकी जगह गोखरू और चिरचिटा (कहते हैं जिसके बीजों से सिर धोने पर सालभर बालों में जूँ नहीं होतीं) की झाड़ियों ने ले ली। चालीस साल पहले अमरीका से मैक्सिकन गेहूँ क्या आया, उसके साथ गाज़र घास भी भारत आ गई। तब से शहरी पड़त ज़मीनों पर उसने क़ब्ज़ा कर लिया।" इस उद्धरण के सहारे हम देख सकते हैं कि लेखक सिर्फ़ स्थानीय नहीं, बल्कि स्थानीय के वैश्विक से सम्बन्ध पर भी निगाह डालते चलते हैं।

क़ुदरत हमें क्या कुछ नहीं देती, लेकिन इंसान क्या ख़ुद को क़ुदरत का हिस्सा मानता है? क्या वह क़ुदरत के मालिक की तरह व्यवहार नहीं करता? किताब इन सवालों से जूझती हुई इंसान और क़ुदरत के बीच सामंजस्य की तरफ़दारी करती है। इसी किताब के एक अध्याय 'मेरे बग़ीचे का पीर नीम बाबा' में दिलीपजी लिखते हैं, "यह हर मौसम का पेड़ है। इसलिए नहीं कि मैं इसे हर मौसम में घर के अहाते में खड़ा देख सकता हूँ बल्कि इसलिए कि साल के हर दिन बग़ीचे में रहने वाले हम प्राणियों के लिए यह कुछ-न-कुछ लिए होता है। अभी इसकी हर पतली टहनी की हर छोटी डण्डी की हर बारीक़ काड़ी पर ताँबई रंग की हरी होती पत्तियाँ हैं और हल्के सफ़ेद फूलों की लड़ियाँ हैं। कभी देखे हैं नीम के फूल? दादी इनसे मीठा शर्बत बनाती थीं, ताऊजी डण्ठलों से दातून करते थे, मैं कड़वी पत्तियों को चबाता हूँ। अपना-अपना स्वभाव है।" किताब का एक अध्याय 'भाषा भौंक से, अर्थ कान से' में लेखक बताते हैं कि कुत्तों की भाषा उन्होंने कैसे सीखी। इसी तरह 'पत्थर का शोरबा और दूसरे क़िस्सागो पत्थर' नामक अध्याय में वे दिखाते हैं कि हालाँकि मनुष्य ख़ुद को बहुत महत्त्वपूर्ण और क़ुदरत के केन्द्र में मानता है, लेकिन कोई छोटा-से-छोटा पत्थर भी हज़ारों-लाखों साल का इतिहास अपने भीतर समाए हो सकता है।

दिलीपजी के पिता, विष्णु चिंचालकर एक बड़े चित्रकार थे, जिन्हें सभी गुरुजी कहते थे। उनके बारे में 'बचपन चित्रकार पिता के साथ' नाम के अध्याय के सहारे लेखक दिखाते हैं कि कलाकार होना, दुनिया से अलग या ऊपर होना नहीं है। अपने पिता के चित्रों की चर्चा करते हुए

वे सामान्य वस्तुओं, रोज़मर्रा की चीज़ों, पत्थरों आदि में व्यक्त कला को रेखांकित करते हैं। इस किताब में और भी कई जगह इस विचार की अभिव्यक्ति है कि कला या कलाकार ठीक उसी तरह जीवन का हिस्सा हैं, जैसे बाक़ी मनुष्य, या वनस्पतियाँ, या मिट्टी-पत्थर, आदि। पिता की याद में लिखे गए इसी अध्याय में वे कलाकार के लिए अच्छे गुरु और अच्छे मित्रों की ज़रूरत चिह्नित करते हैं। पत्रकार, शास्त्रीय गायक और नाटककार मित्रों ने पिताजी की कला को कैसे प्रभावित किया, इसका ज़िक्र भी इस अध्याय में किया गया है।

इस किताब में एक अध्याय शास्त्रीय गायक कुमार गंधर्व के बारे में भी है। लेखक, कुमार गंधर्व की तुलना ऐसे यक्ष से करते हैं जिसे किसी भूल के नाते स्वर्ग के राजा ने स्वर्ग से बाहर कर दिया, और वह गायक धरती पर कुमार गंधर्व बनकर आया। इस लेख में कुमार गंधर्व के सहारे इस बात पर भी चर्चा की गई है कि सारे शास्त्रीय संगीत का आधार लोकगीत होते हैं।

ऐसी किताबें स्कूली परिसर का हिस्सा बनें तो बच्चे रटन्त ज्ञान से दूर, देश-दुनिया की कहानियों से रूबरू होंगे, उनपर सोचेंगे और भाषा का कुशलता से उपयोग समझ-सीख सकेंगे। जब भी ज्ञान प्रायोजित होता है, वह बोरियत-भरा और प्रभावहीन होता है परन्तु अगर उसमें जीवन का अनुभव हो और उसे सरल ज़ुबान में कहा जाए तो वह बहुत काम का होता है। प्रस्तुत किताब इन शर्तों को अच्छी तरह पूरी करती है। भाषा-कौशल, पर्यावरण अध्ययन में अवलोकन-चिन्तन सहसम्बन्ध और विश्लेषण, इन जैसी किताबों के सहारे ये सब काम कर सकते हैं।

अपनी जड़ों से हमें जोड़ती हुई यह किताब परिवेश के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की कला सिखाती है। किताब को पढ़ते हुए लग रहा था कि यह किताब माध्यमिक और उच्च माध्यमिक कक्षाओं के सभी बच्चे-बच्चियों के पास जा सके तो कितना अच्छा हो! किताब के सहारे बच्चों को उनके अनुभव भी लिखने को कहा जाए। यदि सभी बच्चे क़ुदरत के विभिन्न पहलुओं, मसलन बारिश या अपने आसपास के पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, आदि के बारे में अनुभव लिखेंगे, तो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में मदद के साथ हमें समाज की नब्ज़ को समझने में भी मदद मिलेगी।



किताब की साज-सज्जा बहुत बढ़िया है। चूँकि लेखक ख़ुद चित्रकार हैं, इसलिए किताब में दिए गए चित्रों और कहानियों में अच्छी संगति बैठती है। ख़ासकर क़ुदरत सम्बन्धी चित्र बहुत मोहक हैं। यह भी अच्छी बात है कि किताब पूरी तरह शब्दों से नहीं भरी गई है। चित्रों के



लिए पर्याप्त जगह दी गई है। इस किताब का सम्पादन सुशील शुक्ल ने किया है।

उम्मीद है कि सरकारी और ग़ैर-सरकारी संस्थाओं के प्रयास से बच्चों की दुनिया में साहित्य की उतनी ख़ुशबू महकने लगे, जितनी दिलीप चिंचालकर ने *मिट्टी का इत्र* में बिखेर दी है। साहित्य की किताब पढ़ने की कोई उम्र बँधी नहीं होती, किन्तु यह किताब, जो मुझे 51 साल की उम्र में मिल रही है, अगर 8 या 9 साल की उम्र में मिलती तो मैं भी अपने जीवन और अपने आसपास को ज़्यादा बारीक़ नज़र से देख पा रही होती। ख़ैर, अब भी अगर यह भूल सुधर जाए तो बड़ी बात होगी।

अंजना त्रिवेदी विगत ढाई दशकों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। शिक्षण-प्रशिक्षण के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं के लिए सतत लेखन रहा है। महिला स्वास्थ्य, शिक्षा एवं नागरिक अधिकार इनके प्रमुख विषय रहे हैं। अंजना ने पिछले दस सालों तक अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल, मध्यप्रदेश में सामाजिक विज्ञान स्रोत व्यक्ति के रूप में काम किया है। वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से बतौर सलाहकर कार्य कर रही हैं।

सम्पर्क : trivedi20anjana@gmail.com



चुनौती बस यही है कि शिक्षक सोचने–विचारने और पढ़ने–लिखने वाले बनें!

शिक्षक धर्मपाल गंगवार से कमलेश चंद्र जोशी की बातचीत



कमलेश जोशी : अपने बचपन और सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में कुछ बताइए।

धर्मपाल गंगवार : हमारा परिवार, गाँव में रहता था। मेरे पिता बाहर सर्विस करते थे, और बाक़ी सब लोग खेती में लगे हुए थे। घर में सब पढ़ते थे। रात को दीदी, ताई, दादी कहानियाँ सुनाती थीं और हम लोग आसमान, पृथ्वी मण्डल देखते, चाँद-तारों को निहारते तो मज़ा आता था। हम लोग ताऊ के साथ गाय-भैंस चराने जाते, घूमना, दिनभर गेंद-बल्ला खेलना, और नदी किनारे का गाँव था तो नदी में नहाना। इस सबके साथ-साथ पढ़ाई भी चलती रही।

कमलेश जोशी : अपनी शुरुआती और कॉलेज की पढ़ाई व शिक्षक प्रशिक्षण के बारे में बताइए।

धर्मपाल गंगवार : मेरी शुरुआती कक्षाओं की पढ़ाई अपने गाँव में हुई। जूनियर हाई स्कूल दूसरे गाँव (ईंटगाँव) पढ़ने गए। कई आसपास के गाँवों के लड़के एक गाँव से दूसरे गाँव इकट्ठे होते और फिर साथ-साथ पढ़ने जाते थे। वह अच्छा स्कूल था। अध्यापक लोग अच्छे थे, काफ़ी मेहनत से पढ़ाते थे। रामभरोसे लाल गुरुजी अभी भी मुझे याद हैं। बेंत लेकर चलते थे लेकिन अच्छी गणित पढ़ाते थे। एक और गुरुजी लालाराम गंगवार मुझे याद आते हैं जो हिन्दी बहुत अच्छी पढ़ाते थे। मुझे लगता है हिन्दी में मेरी रुचि इसी से जागी होगी। कक्षा 9 से 12 तक की मेरी पढ़ाई इंटर कॉलेज पीलीभीत में हुई। चूँकि मेरे पास खेती थी, मैंने बीएससी एग्रीकल्चर करने का सोचा था इसलिए मैंने धामपुर के एग्रीकल्चर डिग्री कॉलेज में एडमिशन लिया था। उसी समय बीटीसी में जगह निकली थी। मैंने

आवेदन किया और मेरा बीटीसी में नाम आ गया। उन दिनों, राजकीय दीक्षा विद्यालय, जो टीचर ट्रेनिंग स्कूल हुआ करते थे, का बहुत नाम था। घरवालों और रिश्तेदारों ने यह सोचकर, कि पहले नौकरी सुरक्षित कर ली जाए, बीएससी छुड़वा दी और मैंने बीटीसी (87–88, 88–89) में एडमिशन ले लिया। यहाँ सभी अध्यापकगण मित्रवत थे और पढ़ाना सिखाते थे। इसके बाद मुझे लगा कि अब मैं अध्यापक तो बनूँगा ही। मैंने बरेली में डिग्री कॉलेज से बीए किया और नौकरी लगने के बाद हिन्दी में एमए।

कमलेश जोशी : बीटीसी ट्रेनिंग करते हुए क्या शिक्षक बनने का कुछ–कुछ रुझान शुरू हुआ था या तब ऐसा कुछ भी महसूस नहीं हुआ?

धर्मपाल गंगवार : वहाँ का वातावरण ही ऐसा था कि शिक्षक बनने का एहसास होने लगा था। उन दिनों पढ़ाना उतना मुश्किल नहीं लगता था। ब्लैकबोर्ड पर हम पूरी प्रक्रिया करते जाते और अपनी पाठ योजना में लिखते थे। सर ख़ुश होते और कहते, 'हाँ ठीक है'। अध्यापक अपने कथन में कुछ बातें बताते थे कि आपको यह बात स्पष्ट करनी चाहिए, बच्चों के साथ इस तरह से पेश आना है, ये करना है, आदि। बाद में हमारे संस्थान द्वारा कैम्प भी लगवाए गए जिसमें बताते थे कि प्राइमरी स्कूल के शिक्षक के रूप में बच्चों के बीच किस तरह से काम करना है। हालाँकि उस समय पढ़ाने में आने वाली चुनौतियों से रूबरू नहीं किया जाता था। बस ये था कि हमको पढ़ाना है, स्कूल में इसी पर ज़्यादा ज़ोर रहता था।

कमलेश जोशी : आपका बीटीसी और ग्रेजुएशन के उपरान्त शिक्षक बनने का सफ़र कब शुरू हुआ, कैसा रहा, और कितने साल पढ़ाते हो गए आपको?

धर्मपाल गंगवार : ग्रेजुएशन के बाद मैं खेती–बाड़ी करने लगा। घर में ऐसा रुझान बिलकुल नहीं था कि मैं कहीं नौकरी करने बाहर जाऊँ। लेकिन 1994 में हम लोग नैनीताल आए और तब मैंने शिक्षक बनने के लिए एप्लाई किया। उस दौरान यहाँ पर उत्तराखंड आन्दोलन शुरू हुआ तो नियुक्ति काफ़ी लेट हुई पर मिल गई! 15 अप्रैल, 1995 को राजकीय प्राथमिक विद्यालय, सूर्यागाँव में मेरी पोस्टिंग हो गई। ये जगह भीमताल में पहाड़ पर है। मुझे लगता है कि



अगर मैं पहाड़ में नौकरी न करता तो काफ़ी चीज़ों से वंचित रह जाता। वहाँ की कुमाऊँनी भाषा, रहन-सहन, खान-पान से मैं काफ़ी रूबरू हुआ; ख़ासकर पैदल चलना। वहाँ के मास्टर साहब के साथ मैं पैदल जाता था। रास्ते में वे मुझे *कई* कहानियाँ सुनाते थे। वो जीवन जीने की कला, मसलन, कैसा जीवन जीना चाहिए, कैसे रहना चाहिए, आदि पर चर्चा करते थे। उनका मुझपर प्रभाव पड़ा। यह सफ़र तब शुरू हुआ और आज मुझे इस पेशे में 25 साल हो गए हैं।

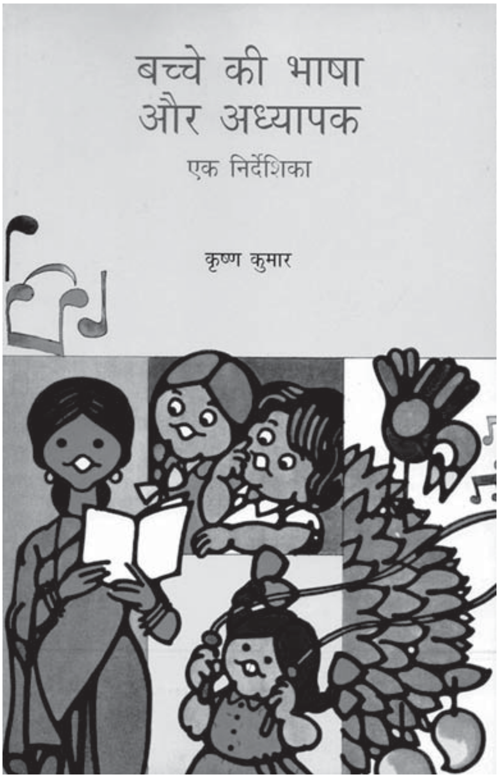


कमलेश जोशी : आप नियमित रूप से पढ़ते भी रहते हैं। यह रुचि आपमें कैसे विकसित हुई? शिक्षक के लिए इसे कितना महत्वपूर्ण मानते हैं?

धर्मपाल गंगवार : मैं रुहेलखंड यूनिवर्सिटी से स्नातक कर रहा था, वहाँ का सिलेबस बहुत अच्छा था। वहाँ पहले साल के कोर्स में उपन्यास था *निर्मला* और दूसरे साल श्रीलाल शुक्ल का *राग दरबारी*। इनकी भाषा बहुत सुन्दर थी, और ये उपन्यास गहरे तक असर कर गए। एक तीसरी किताब थी *मैला आँचल*। इसके अलावा इसमें *पंचवटी, यशोधरा और कुरुक्षेत्र* किताबें थीं। यहाँ से मुझे लगा कि साहित्य पढ़ने में बेहद दिलचस्प चीज़ है। स्नातक के बाद मेरा पढ़ना-लिखना बन्द हो गया क्योंकि नियुक्ति नहीं हुई और मैं घर पर खेती-बाड़ी कर रहा था, तो पढ़ने-लिखने का माहौल था नहीं। वैसे मुझे *निर्मला* पढ़ने के बाद मुंशी प्रेमचंद के साहित्य की ललक लग गई थी। मैं जब कभी स्टेशन जाता और यदि कहीं भी कहानियाँ दिखतीं, मैं ख़रीद लेता था। उन्हीं दिनों मैं प्रेमचंद का उपन्यास लाया *ग़बन* और उसके बाद *गोदान*। फिर मुझे मुंशी प्रेमचंद इतने भा गए कि मैंने उनकी लगभग सभी कहानियाँ पढ़ डालीं। मुझे पढ़ने में मज़ा आने लगा और जब मैं अध्यापक बन गया तो इधर भी गाहे-बगाहे पढ़ता रहा। जब मैं यहाँ खटीमा, ऊधम सिंह नगर आया तो अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ा, तब मैंने दिनेशपुर के ज़िला संस्थान की भरी-पूरी लाइब्रेरी देखी। वहाँ तरह-तरह की किताबें हैं। वहाँ पर जो पहली किताब मैंने इशू कराई थी वो थी *नीलबाग़ स्कूल*। किताब पढ़कर मुझे लगा कि शिक्षा तो कुछ अलग ही मामला है। मैं क्या कर रहा हूँ स्कूल में...। इसके बाद कृष्ण कुमार की *राज समाज और शिक्षा* पढ़ी। इन किताबों को पढ़ने के बाद से मेरी शिक्षा सम्बन्धी किताबें पढ़ने की रुचि जागी और समझना शुरू हुआ कि शिक्षा का पूरा मुद्दा क्या है। कृष्ण कुमार की सारी किताबें मैंने पढ़ डालीं। चाहे वो *ग़ुलामी की शिक्षा और वर्चस्व* हो, *शिक्षा और ज्ञान, बच्चे*

की भाषा और अध्यापक हो, *दीवार का इस्तेमाल, सपनों का पेड़, अब्दुल मजीद का छुरा, मेरा देश तुम्हारा देश, शान्ति का समर, चूड़ी बाज़ार में लड़की,* या *काठगोदाम* हो, ये सारी किताबें मैंने ख़रीदीं और घर की लाइब्रेरी में इन्हें शामिल किया।

इसी तरह से दूसरे शिक्षाविद् हैं गिजुभाई, जिनको मैं पहले नहीं जानता था। उनकी किताब *दिवास्वप्न* मैंने अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन ज़िला संस्थान दिनेशपुर से ही इशू कराई थी। इसके बाद मैंने गिजुभाई को पढ़ना शुरू किया। उनकी कई किताबें पढ़ीं और मुझे लगा कि ये किताबें घर में होनी चाहिए। इनके अलावा, तमाम और किताबें जो शिक्षा जगत से जुड़ी हुई थीं, उन्हें भी पढ़ा। इनसे मुझे ये लगने लगा कि जो हम कक्षा में पढ़ा रहे थे वो पर्याप्त नहीं था। मैंने बीटीसी की थी, उससे कुछ नहीं जुड़ रहा था। वो पुरानी चीज़ें थीं। अब कुछ नया विमर्श आया है, कुछ नई बातें कही जा रही हैं, ये चीज़ें मुझे धीरे-धीरे समझ में आने लगीं। भाषा का मामला हो तो रमाकांत अग्निहोत्री, हृदयकांत दीवान, ये समझ में आने लगे। मुझे लगता है कि शिक्षक को पढ़ता-लिखता ज़रूर होना चाहिए। मैं अध्यापक हूँ और मेरा काम है पढ़ना और पढ़ाना। इसलिए पढ़ना मुझे पहले ज़रूरी लग रहा है। जब आप लगातार पढ़ रहे हैं तभी आप अपनी कक्षा में कुछ अच्छा कर पाएँगे, शैक्षिक मुद्दों को समझ पाएँगे, वरना आप बताते रहेंगे पर पढ़ा नहीं पाएँगे। बच्चों से संवाद स्थापित करना है, बातचीत का, लिखने का क्या महत्त्व है, ये सारी बातें मुझे समझ में आईं। इसके अलावा, तमाम आलेख जो मुझे मिलते हैं, ये कहीं-न-कहीं हमारे पेशेवर कार्य से जुड़ते हैं। मुझे लगता है कि हर अध्यापक को पढ़ने-लिखने का काम अपने अध्यापकीय जीवन में ज़रूर करना चाहिए। तभी आप बच्चों को साहित्य से जोड़ सकते हैं। जैसे अगर हम बाल साहित्य देखते हैं तो उसमें बड़ी मज़ेदार किताबें हैं। जब आप ख़ुद साहित्य अनुरागी होंगे, ख़ुद लगातार पढ़ रहे होंगे तो आपको लगेगा कि ये किताबें कुछ अलग कह रही हैं। मैंने ऐसा सोचा ही नहीं। मैं इन्हें महज़ बच्चों की किताब समझ रहा था लेकिन ये कुछ अलग ही मामला है। मैंने लाइब्रेरी का काम शुरू किया। ख़ुद पढ़ता हूँ और बच्चों को पढ़ाता हूँ और आज भी यह पढ़ने-पढ़ाने का सिलसिला लगातार ज़ारी है।



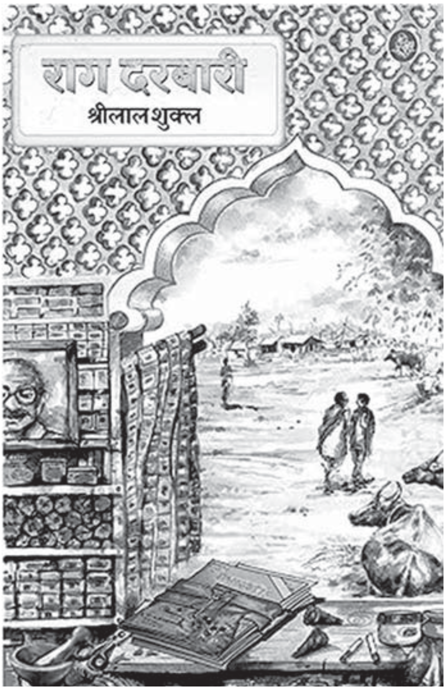
कमलेश जोशी : *नीलबाग का स्कूल* और *राज समाज और शिक्षा* आपने किस समय पढ़ी होगी?

धर्मपाल गंगवार : मैंने 2013 में ये दोनों किताबें पढ़ी होंगी। *राज समाज और शिक्षा* से मुझे शिक्षा को लेकर जो प्रश्न थे कि ऐसा क्यों है, उनमें से कई के जवाब मिले लेकिन कई नए मेरे प्रश्न भी उठे। उसमें एक अध्याय है सुबह की प्रार्थना सभा को लेकर, वह शायद कृष्ण कुमार से सर्वे कराया गया था पूरे उत्तर भारत की प्रार्थनाओं

का। प्रार्थना का क्या औचित्य है और वे क्या कहती हैं। यह पढ़कर मन में सवाल आया कि हम बच्चों को प्रार्थना क्यों रटवाए पड़े हैं, क्यों ज़बरदस्ती कहलवाए पड़े हैं, उसपर मैंने एक लेख भी लिखा जो किसी पत्रिका में छपा था।

कमलेश जोशी : एक शिक्षक की भूमिका में आप अपने शिक्षण कार्य में किन बातों को सबसे महत्त्वपूर्ण समझते हैं?

धर्मपाल गंगवार : मुझे लगता रहा है कि एक शिक्षक का अपने बच्चों से जुड़ाव होना ही चाहिए। जितना उसका जुड़ाव होगा, बच्चे निःसंकोच अपनी बात कह पाएँगे और इससे आप बच्चों को बेहतर समझ पाएँगे। आपमें बच्चों की बात सुनने की क्षमता हो, ये सबसे ज़रूरी है। होता अकसर ये है कि सुना कम जाता है और सुनाया ज़्यादा। मैंने ये अनुभव किया है जब आप बच्चों को सुनते हैं उन्हें ज़्यादा मज़ा आता है। आप उनको धैर्यपूर्वक सुन लें जब उनके पास सुनाने को कुछ भी न रहे फिर उनसे आप अपनी बात कह सकते हैं, नहीं तो संवाद नहीं हो पाएगा। आप कुछ कहना चाह रहे हैं, बच्चा कुछ और सुनना चाह रहा है, इसलिए मुझे लगता है ये जुड़ाव बहुत ज़रूरी है। सुनने को लेकर मुझे *तोत्तोचान* किताब की बहुत याद आती है। वहाँ जो हेड मास्टर साहब थे, जब वे पहली बार तोत्तोचान से मिलते हैं, उसे तीन-चार घण्टे तक सुनते रहते हैं। और फिर वो कहती है कि ''...अरे वाह! लगता है कि आपके साथ मेरी बात बनेगी...।'' यह चीज़ मुझे प्रभावित करती है। इसके अलावा, शिक्षक अपने व्यवहार से बच्चों के बीच संवेदनशील शिक्षक की छवि बनाएँ। उनसे ऐसी बातचीत करें जिससे बच्चों के लिए कुछ मतलब निकलकर आए। मुझे लगता कि केवल पढ़ा देना ही शिक्षण नहीं है। कोई पाठ क्यों रखा गया है, कंटेंट क्या है उसका, उसे उभार पाना ही सही शिक्षण है। और उसमें भी केवल एकतरफ़ा नहीं, बल्कि दोतरफा़ संवाद हो। मतलब कुछ बच्चे कहें और कुछ हम, उन्होंने बच्चों की सहभागिता हो, तब लगता है कि कोई बातचीत बनी है। ऐसे में बच्चों को लगता है कि जो बात उसने कही है, वो भी महत्त्वपूर्ण है और उन्हें भी सुना जा रहा है।



कमलेश जोशी : आपने विद्यालय में भाषा शिक्षण को लेकर अच्छा काम किया है। इससे जुड़े कुछ शिक्षण अनुभव बताएँ।

धर्मपाल गंगवार : मैं भाषा का विद्यार्थी रहा हूँ। मुझे लगता है हिन्दी भाषा, पर्यावरण अध्ययन, गणित, या अँग्रेज़ी भी सिखाने की जड़ है। हिन्दी भाषा की हर विषय सिखाने में ज़रूरत होती है, बिना इसके काम चलेगा ही नहीं। आप गणित कैसे पढ़ाएँगे यदि बच्चा भाषा नहीं जानता होगा! इसकी महत्ता को मैं स्वीकार करता हूँ कि बच्चे पहले पढ़ना सीखें, लिखना सीखें, बात करना सीखें, तभी आप उनको कुछ और बता सकते हैं। इसके लिए मैंने अपने विद्यालय में लाइब्रेरी बनाई है, उसमें क़रीब 700-800 अच्छी किताबें होंगी। मेरा इस बात पर काफ़ी फ़ोकस रहता है कि बच्चों को सप्ताह में एक या दो बार किताबें पढ़कर सुना

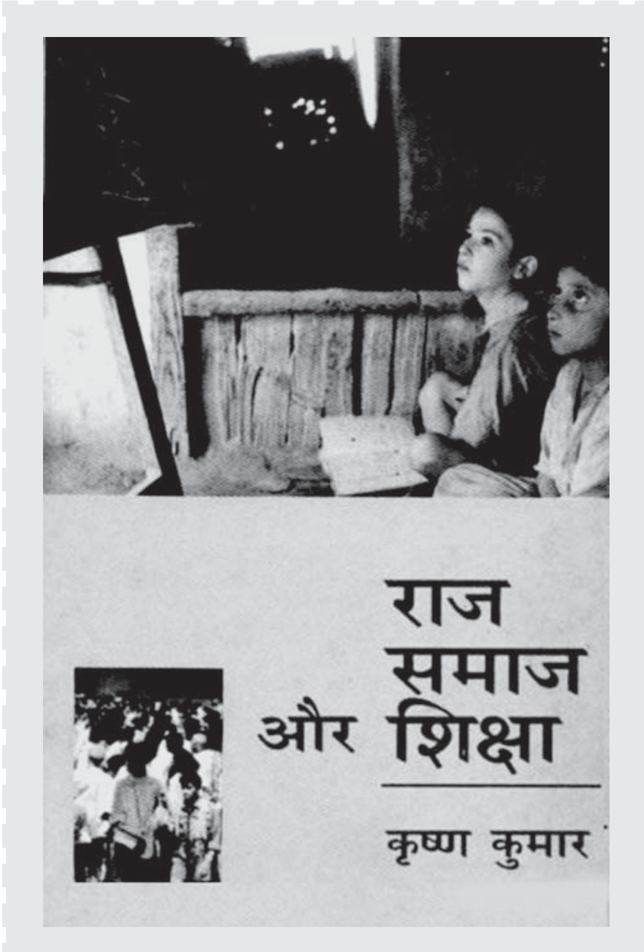
पाऊँ। बाल साहित्य में बच्चों को तरह-तरह के मायने मिलते हैं। वो सोचते हैं कि ऐसा मैंने सोचा ही नहीं था, या देखा ही नहीं था, उनका शब्द भण्डार बढ़ता है। मैं कोशिश करता हूँ कि बच्चे ढेर सारी किताबों को पढ़ें और इसको मैं पहले ही दिन से शुरू करता हूँ। जैसे– कक्षा एक में *बरखा* सीरीज़ की किताबों को देखें, उसमें हर पेज पर एक या दो लाइन होती हैं। जब बच्चों को इस तरह की सन्दर्भपूर्ण सामग्री पढ़ने को मिलती है, उनका भाषा से जुड़ाव बनता है। वे उन किताबों के चित्रों को पढ़ते हैं। वो देखते हैं कि बाएँ से दाहिने पढ़ा जाता है, शब्द अलग-अलग लिखे हैं, उनमें कुछ चित्र हैं जिनसे लिखित सामग्री का जुड़ाव बन रहा है, वहाँ से उनके पढ़ने की शुरुआत होती है। फिर बच्चे धीरे-धीरे बड़ी किताबें भी पढ़ने लगते हैं। मुझे याद है, मेरे यहाँ एक बच्ची थी आयशा, उसने बड़ी किताब *पहला अध्यापक* पढ़ी। आज भी बच्चे रोज़ाना किताबें ले जाते हैं और जब रोज़ाना ले जाते हैं तो लिखने के लिए अग्रसर होते हैं। वहाँ से उन्हें शब्द मिलते हैं, वाक्य मिलते हैं और एक पूरा सन्दर्भ मिलता है। मुझे लगता है कि भाषा पर काम करना बेहद रोचक और मज़ेदार है। यह बहुत ज़रूरी है कि आप लाइब्रेरी का लगातार इस्तेमाल करते रहें, बच्चों को भाषा पढ़ाएँ और बातचीत के मायने खोलते रहें। यहीं से पढ़ने और लिखने की शुरुआत होती है और बच्चे शुरुआती पाठक बनने की ओर अग्रसर होते हैं। जब उन्हें पहले से ही रुचि हो जाती है तो वे आगे भी पढ़ना चाहते हैं। आज यह बहुत ज़्यादा ज़रूरी है कि बच्चे पाठक बनें। ये किताबें बच्चों के लिए हैं ही, लेकिन मुझे लगता है कि यह हम बड़ों यानी शिक्षकों के लिए भी उतनी ही उपयोगी हैं। हम उनको पढ़ें, उनका रस लें, तब ही हम बच्चों को कोई रस दे सकते हैं।

कमलेश जोशी : अपने शिक्षकीय अनुभव से अध्यापन की जो ख़ास बातें आपको समझ में आईं, उनके बारे में बताइए?

धर्मपाल गंगवार : ख़ास अनुभव यही है कि एक अध्यापक को लगातार अपने पेशेवर विकास के बारे में चिन्तनशील होना चाहिए। हमको सोचना पड़ेगा क्योंकि समाज हमें बुद्धिजीवी कहता है, और हमसे बहुत अपेक्षाएँ रखता है। हम समाज में बदलाव के वाहक माने जाते हैं। मुझे लगता है कि हम लोगों को लगातार पढ़ते और बात करते रहना चाहिए, साथ ही अपनी गुणवत्ता को निखारने के लिए लगातार चिन्तनशील होना चाहिए। शिक्षाविदों से मिलना, उनके आलेख पढ़ना, सेमिनार अटेंड करना, कुछ लेखन करना, आदि तरीक़ों से एक शिक्षक



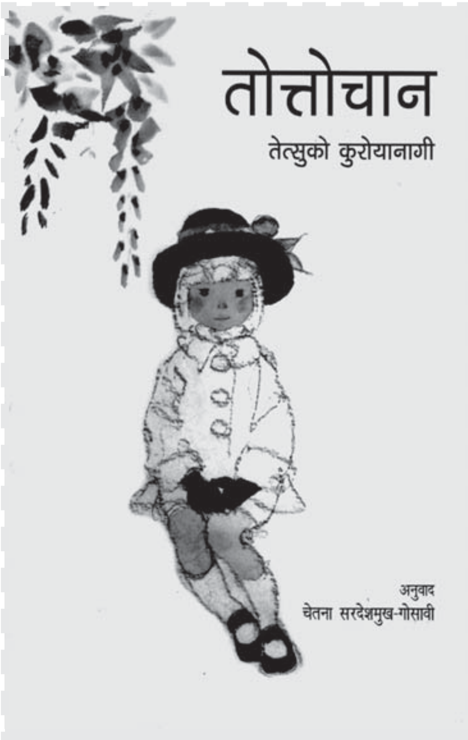
को लगातार जुड़े रहना चाहिए। मैं कक्षा अनुभव लिखने की कोशिश करता हूँ। एक अध्यापक के लिए यह भी ज़रूरी है कि वो चीज़ों का अवलोकन करे, वह देखे कि बच्चे पढ़ना-लिखना कैसे सीख रहे हैं और उन अनुभवों को दर्ज कर पाएँ। ये चीज़ें सुझाती हैं कि हम कैसे सुधार करें। पिछले साल हमने काम किया और उसको लिखा। इस साल जब हमने काम किया, उसे लिखने से पता लगता है कि इनमें अन्तर क्या है। कई बार आत्म-अवलोकन का मौक़ा मिलता है कि हमें वहाँ पर कुछ और करना चाहिए था, जो हम नहीं कर पाए। अवलोकनों को दर्ज करने के साथ ही पाठ योजना बनाना भी बेहद ज़रूरी है। किसी पाठ को लेकर हमारे पास कुछ सवाल होते हैं, जिनपर हमें संवाद करना होता है। अगर हम बिना किसी तैयारी के यूँ ही कक्षा में चले जाएँगे, संवाद किस विषय पर करना है, फ़ोकस किस बात पर करना है, कौन-से सवाल हमारे सोचने वाले होंगे, वो चीज़ अगर कहीं छूट जाती है तो शिक्षण अधूरा रहता है। हमारे पास शिक्षण की बहुत बड़ी लिखित योजना भले न हो, पर छोटी योजना ज़रूर हो। तब जाकर हमारा शिक्षण बेहतर होता है और उसमें लगातार निखार आता है। इसके लिए अपने साथियों से भी लगातार चर्चा करनी चाहिए। अगर आपका कोई ग्रुप है तो उसमें चर्चा कर सकते हैं, लिखकर साझा कर सकते हैं कि मैंने ये पाठ ऐसे पढ़ाया, आप कैसे पढ़ा सकते हैं। शिक्षा में केवल पढ़ा देना मुद्दा नहीं है, बड़ा मुद्दा यह है कि हम बड़े प्रश्नों से न भागें, उनपर चर्चा करें। कई बार हम ये सोच लेते हैं कि प्राथमिक स्तर पर इस तरह की चर्चा नहीं हो सकती है... यह बात ठीक नहीं है। शुरू से बड़े मुद्दों पर बच्चों के साथ चर्चा करनी चाहिए, मुद्दों को उभारना चाहिए, धीरे-धीरे बच्चे चर्चा में आते हैं, खुलते हैं और उनकी समझ का विस्तार होता है।



कमलेश जोशी : आप पुस्तकालय के बारे में बता रहे थे जो आपने अपने विद्यालय में बनाया है, इसके महत्त्व को स्कूल में आपने कैसे महसूस किया है?

धर्मपाल गंगवार : पहले भी मैं बच्चों को पढ़ाता था, लेकिन वो पुरानी तरह का बाल साहित्य था और उतना रोचक नहीं था। मैंने कृष्ण कुमार की किताबें *पढ़ना ज़रा सोचना,*

शिक्षा का सरोकार पढ़ीं। इनमें बाल साहित्य का महत्त्व बताया गया है। इसी तरह एक लेख 'मेरा निजी पुस्तकालय' पढ़ा जिससे मुझे लगा कि जितने महान लोग हैं, उन्होंने पढ़ा बहुत है और पढ़ने की आदत उनमें शुरू से रही है। वह बीज उनके माता-पिता से, उनके शिक्षकों से पड़ा है। मेरी यही कोशिश रहती है कि मैं शुरू से यह बीजारोपण कर सकूँ कि बच्चे बाल साहित्य से जुड़ें, उसको पढ़ें और अच्छे पाठक बनें, क्योंकि मुझको लगता है कि इसके बिना कुछ होना नहीं है। शुरू में लगता था कि यह प्रक्रिया बहुत धीमी है, पर यह बहुत तेज़ी से होती है। मैंने देखा कि जब बच्चे लगातार विद्यालय में बैठे किताबें पढ़ते रहते हैं, अपने साथियों को सुनते रहते हैं, कक्षा 4, 5 में आकर वो अच्छे पाठक और लेखक बन जाते हैं, तो पुस्तकालय का उपयोग बेहद प्रभावी है। मुझे ख़ुशी है कि मेरे स्कूल में कई बहुत अच्छे पाठक हैं जो अच्छी किताबें पढ़ते हैं और लिखते भी हैं। जो पुराने विद्यार्थी हैं, वो भी आकर किताबें ले जाते हैं।



कमलेश जोशी : आपका समुदाय से भी काफ़ी अच्छा सम्बन्ध है। समुदाय से जुड़ाव के आपके क्या अनुभव रहे हैं?

धर्मपाल गंगवार : हमारे स्कूल में अल्पसंख्यक बच्चों का बाहुल्य है। 25 साल से मैं उनके साथ हूँ। मैंने उनके गाँव में बच्चे देखे, चाचा-ताऊ देखे, भैया-भाभियाँ देखीं, मैंने कोई हिन्दू-मुसलमान नहीं देखा। बच्चे कभी पूछते हैं कि आप मुसलमान लगते हो जब आप इंशा अल्लाह कहते हो, और कभी आप हिन्दू लगते हो। मैंने कहा कि जिस समय तुमको जो लगता हूँ, वही हूँ मैं। उस गाँव में कई बेटियों की शादी हो गई है और उनके बच्चे हमारे यहाँ पढ़ने आने लगे हैं। मैं बच्चों के घर पर जाता हूँ, उनको लगता है कि गुरुजी हिन्दू हैं शायद चाय हमारे घर पर नहीं पिएँगे। मैं कह देता हूँ कि चाय घर पर बना लो वो बनाते हैं। जो द्वेष मैं आज समाज में देख रहा हूँ, वो मुझे कहीं नहीं दिखाई दिया। 25 साल में आज तक मुझे उस गाँव में किसी तरह की कोई दिक़्क़त नहीं हुई। कहीं भी मुझे कोई हिन्दू-मुसलमान नज़र नहीं आता, सब बच्चे नज़र आते हैं। हम व्यक्तिगत ज़िन्दगी में झाँककर देखें तो चीज़ें खुलती हैं। ऐसा नहीं है कि कोई किसी से नफ़रत कर रहा है। बहुत अच्छा कल्चर है इस्लामिक सभ्यता। मुझे उस गाँव से पिछले 25 सालों में बहुत प्यार मिला है। जिन बच्चों को मैंने 1998 में पढ़ाया था, अब उनके बच्चे पढ़ने आ रहे हैं और बहुत प्यार करते हैं। जब बच्चे आकर पाँव छूते हैं, लोग चौंक जाते हैं कि ये मुस्लिम बच्चा है और आपके पैर छू रहा है! मैं कहता हूँ पता नहीं क्यों छू रहा है! मुझे वहाँ हिन्दू-मुसलमान जैसा नहीं लगता, मुझे सब इंसान लगते हैं और बहुत मोहब्बत मिलती है।

कमलेश जोशी : आपके सुदीर्घ अनुभव से एक शिक्षक को कैसा होना चाहिए, क्या होना चाहिए?

धर्मपाल गंगवार : समाज शिक्षक के कार्य करने से ही बदला है। शिक्षक का काम केवल पढ़ा देना नहीं है, उसका काम बड़ा है। उस बड़े काम को समझना पड़ेगा, उसके लिए चिन्तन करना पड़ेगा कि केवल उसे नौकरी न समझे। जैसे ये शब्द कहे जाते हैं कि शिक्षक राष्ट्र निर्माण कर रहे हैं। हम राष्ट्र निर्माण कह तो देते हैं, लेकिन इसका मायने क्या है, इसकी प्रक्रिया क्या हो, ये जानना एक शिक्षक के लिए बहुत ज़रूरी है। हम सर्वांगीण विकास भी कह देते हैं, लेकिन इसका अर्थ क्या है, इसकी प्रक्रिया क्या होगी, इसको गहराई में जाकर सोचें कि इसके लिए हमको करना क्या है। परम्परागत तरीक़े से काम करते रहे और पाठ पढ़ा दिया, उतने से काम नहीं चलेगा। एक शिक्षक के लिए ज़रूरी है ये सोचना कि हम बदलाव के वाहक हैं और हमें बड़े परिवर्तन करके इंसानों का निर्माण करना है।

कमलेश जोशी : आपको हेड मास्टर बने भी काफ़ी साल हो गए हैं। क्या अनुभव, क्या चुनौतियाँ हैं हेड मास्टर के रूप में?

धर्मपाल गंगवार : मुझे हमेशा अच्छे साथी मिले, जिन्होंने मेरा हमेशा सहयोग किया है। मुझे लगता है कि काम करने में पारदर्शिता, खुलापन होना ज़रूरी है। दूसरा, सभी एक टीम की तरह काम करें। कई बार मैं अपने साथियों के साथ आलेख पढ़ने का काम भी करता हूँ। लेकिन चुनौती तो है! कुछ शिक्षक साथी आपके साथ आलेख पढ़ते हैं और काम करते हैं, लेकिन सभी करते हैं ऐसा नहीं है। ये एक बहुत बड़ी चुनौती है कि बाक़ी साथी भी पढ़ें और उस तरह से काम करें। और यह मेरे लिए अभी भी बड़ी चुनौती है कि वे पाठ योजना बना पाएँ, उसके अनुसार काम कर पाएँ, और पुस्तकालय की महत्ता समझ पाएँ। कुछ समझ पाए हैं, लेकिन कुछ को अभी भी लग रहा है कि ये महत्त्वपूर्ण नहीं है। चुनौती बस यही है कि बाक़ी शिक्षक भी सोचने-विचारने वाले और पढ़ते-लिखते शिक्षक बनें।

कमलेश जोशी : वर्तमान समय में एक शिक्षक होने की क्या चुनौतियाँ लगती हैं?

धर्मपाल गंगवार : वर्तमान समय चुनौतीपूर्ण है। एक तरफ़ सरकार है, शिक्षाविद हैं और एक तरफ़ बच्चा है। बच्चा भी वैसा, जिसके घर में पढ़ने-लिखने का माहौल नहीं है, और चीज़ों की दरकार ज़्यादा है। उनके जीवन में पढ़ने-लिखने से ज़्यादा कई काम महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्हें वो वरीयता देते हैं। ये काफ़ी चुनौती भरा काम है। सरकार कुछ कर देती है, शिक्षाविद कुछ करते रह जाते हैं और अध्यापक कहीं अलग जूझ रहा है। उपस्थिति को लेकर भी



दिक़्क़त होती है, क्योंकि जो वर्ग हमारे यहाँ आता है, वह आगे की पढ़ाई के लिए ख़ुद को बहुत असहाय महसूस करता है। विभिन्न तरीक़ों के जो कौशल हैं, वो प्राथमिक स्तर से ही उनको बहुत चुनौती लगने लगते हैं। सरकार शिक्षकों को कई तरीक़ों के काम में आज भी लगाए हुए है। मसलन, आज भी हमारे एक शिक्षक बाढ़ ड्यूटी में हैं, और शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात कभी पूरा नहीं हुआ। पहले भी चार लोग थे, और आज जब 180 बच्चे हैं, तब भी हम 4 लोग हैं। ये बड़ी चुनौती है कि हम 4 शिक्षक हैं तो 5 कक्षाओं को कैसे पढ़ा पाएँगे। कई बार ख़ुद से शिक्षक लगाने पड़ते हैं, उनसे काफ़ी सहयोग मिलता है। चुनौतियाँ तो हैं, लेकिन ये कभी ख़त्म होंगी, ऐसा सम्भव नहीं है। उनसे जूझना ही मनुष्य का काम है। वह जूझता ही रहा है सदियों से। उसी में कुछ लोग बहुत अच्छा कर जाते हैं और कुछ बस सोचते रहते हैं।



(आभार : इस बातचीत को ट्रांसक्राइब करने में मनीषा सिंह, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर ने मदद की है)

कमलेश चंद्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों–शिक्षक शिक्षा, बाल साहित्य, प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता आदि में गहरी रुचि। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर में कार्यरत।

सम्पर्क : kamlesh@azimpremjifoundation.org

धर्मपाल गंगवार राजकीय प्राथमिक विद्यालय, हल्दीपचपेड़ा, खटीमा (ऊधम सिंह नगर) में प्रधानाध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। वे पिछले 27 सालों से अध्यापन के पेशे से जुड़े हुए हैं। उनकी शैक्षिक मुद्दों, भाषा शिक्षण व बच्चों के लिए पुस्तकालय को लेकर गहरी रुचि रही है। इसको लेकर वे अपने स्कूल प्रयोग करते रहे हैं और सीखने–सिखाने का सक्रिय माहौल बना पाए हैं। इसके अलावा उनकी स्वयं की भी पढ़ने–लिखने में रुचि रही है और नियमित रूप से पुस्तकें पढ़ते रहते हैं। वर्तमान में वे इस रुचि को अपने साथियों में भी एक समूह के माध्यम से विकसित करने के लिए प्रयासरत हैं।

सम्पर्क : dp09gangwar@gmail.com

लिखना क्या है ? बच्चों को कैसे सिखाएँ लिखना ?

इस अंक का संवाद 'लिखना' विषय पर है। संवाद में शामिल थे : गुलज़ार, अमोली बामनी, डी ब्लॉक जाँजगीर, छत्तीसगढ़ से; खजान सिंह, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, उत्तराखंड से; दीपक कुमार राय, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर से; दीक्षा, शासकीय स्कूल दामखेड़ा, कोलार, मध्यप्रदेश से; और मृत्युंजय, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल से। चर्चा को प्रतिभा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, देहरादून, उत्तराखंड ने फ़ेसिलिटेट किया था। –सं.

प्रतिभा : हम सभी लम्बे समय से शिक्षा में काम कर रहे हैं, और जानते हैं कि लिखने को लेकर फ़ील्ड में किस तरह की चुनौतियाँ हैं। बच्चा जब स्कूल आता है तो बोलने और सुनने की भाषाई दक्षताओं के साथ, वह बहुत सारे शब्द, बहुत सारे तर्क लेकर आता है। बहुत सारी बातें कहने की क्षमता रखता है। लेकिन जब कहीं गई बात को उसे लिखना या पढ़ना होता है तो उसे बहुत दिक़्क़त आती है। लिखना सुनते ही उस बच्चे को लगता है कि ये कुछ नई चीज़ है। कबूतर, जिसके संग वह खेल रहा है, पतंग, जो वो उड़ा रहा है, वह आसान है, किन्तु पतंग को लिखने की बात आते ही मुश्किल आती है और यह मुश्किल लगातार बढ़ती भी जाती है। लिखना हम बड़ों के लिए भी एक चुनौती है। हम सभी यही सोचते हैं कि बोलकर बात कर लेते हैं, लिखने की बात क्यों कर रहे हैं। यह संवाद इसी बात पर है कि लिखना चुनौती कैसे बन जाता है?

गुलज़ार आप बताएँ कि लिखने को लेकर प्राथमिक कक्षाओं में बुनियादी तौर पर किस तरह की चुनौतियाँ आती हैं। यानी, कक्षा 1 व 2 में बच्चे किस तरह की दिक़्क़तों से जूझते हैं?

गुलज़ार : मैं कक्षा 2 और 3 को पढ़ाता हूँ। जैसा कि हम जानते हैं, स्कूल में जब बच्चे पहली बार आते हैं, वे बात करने में माहिर होते हैं। लेकिन लिखने के बारे में बात करने पर वो हिचकिचाते हैं, क्योंकि लिखना उनके लिए एक नई चीज़ होती है। उन्होंने थोड़ी-बहुत डूडलिंग की होती है, चित्र बनाए होते हैं। लेकिन हम शिक्षक समझते हैं कि लिखना माने सावधानी से, साफ़ लिखना है। यही बच्चे भी पकड़ लेते हैं। वे भी यही समझने लगते हैं कि अगर सही, साफ़ नहीं लिखेंगे तो ग़लत हो जाएगा। फिर डाँट मिलेगी और बाक़ी लोग हँसेंगे। दूसरी बात, जब बच्चे कक्षा 1 में स्कूल आते हैं, तब उनमें बहुत कुछ सीखने की क्षमता होती हैं। वे लिखने की बुनियादी बातें सीख सकते हैं। इसमें यह बात बहुत मायने रखती है कि हम किस तरीक़े से शुरू करते हैं। जैसे– हम बच्चों से कैसे बात करते हैं; उनके साथ खेलते हैं कि नहीं; क्या उनकी बातों को ध्यान से सुनते हैं या नहीं; उनकी बातों में दिलचस्पी लेते हैं या नहीं। लिखना चूँकि बच्चों के लिए नया होता है तो थोड़ा समय लगता है। उनके साथ विभिन्न मुद्दों पर बातचीत करने से विचार बनाने में मदद मिलती है। बातचीत, कविता, कहानी सुनाना, यह सब भी उनको लिखना सीखने में मदद



करता है, लेकिन अच्छा लिखना वास्तव में बच्चों को लिखने का अवसर देना है। उन्हें जितना ज़्यादा अवसर, समय मिलता है, वे बेहतर लिख पाते हैं। इस सीखने में धैर्य बहुत बड़ी चीज़ है।

प्रतिभा : लिखना सीखने का आशय क्या है? मतलब, कक्षा 1 का बच्चा कितना सीख जाए? कक्षा 2 की ओर इस प्रोग्रेशन को कैसे देखते हैं? हम कब कहेंगे कि अब उसको लिखना आ गया या आ रहा है?

गुलज़ार : लिखने से आशय है, बच्चा अपनी बातों / विचारों या अनुभव को लिपि का प्रयोग करते हुए सम्प्रेषित कर पाए। कभी-कभार हम यह सोचते हैं कि कक्षा 1 का बच्चा जब तक पूरी वर्णमाला नहीं सीख जाता, मात्रा नहीं सीख जाता, तब तक हम लिखने की शुरुआत नहीं कर सकते। कई बार बच्चा चार-पाँच अक्षरों को, कुछ मात्राओं को नहीं सीख पाया है तो हम उसे लिखने का अवसर ही नहीं देते हैं। लेकिन मुझे यह ठीक नहीं लगता। मुझे लगता है, बच्चा अगर कुछ मात्राओं या अक्षरों को नहीं भी जान पा रहा है, तब भी लिखने की शुरुआत कर सकते हैं। यहाँ तक कि दो अक्षरों से भी हम अर्थपूर्ण लिखना शुरू कर सकते हैं, क्योंकि ये जो लिखने का काम है, पढ़ने के साथ-साथ, समझने के साथ-साथ होता है।

प्रतिभा : गुलज़ारजी ने बताया कि लिखना कई तरीक़ों से हो सकता है। आकृतियाँ बनाना और डूडलिंग भी लिखने का ही एक तरीक़ा है। ये प्राथमिक स्तर की बात थी। दीपकजी से सवाल है कि क्या उच्च प्राथमिक कक्षाओं में लिखने की चुनौतियाँ कुछ बदलती हैं, वहाँ कैसी चुनौतियाँ होती हैं?

दीपक : मेरा अनुभव है कि प्राथमिक में शुरू से ही जो बोर्ड पर लिखा है, उसे ही लिखने का अभ्यास होता है। यह प्रक्रिया उच्च प्राथमिक कक्षाओं में भी जारी रहती है। अब दिक़्क़त यह हो जाती है कि शुरू से लिखने का यही अभ्यास है कि कभी आड़ी-तिरछी रेखाओं को, वर्णों व मात्राओं को बोर्ड से उतरवा दिया, कभी शब्दों से कुछ तय वाक्य बनाकर दे दिए, प्रश्नोत्तर याद करवा लिए। इससे बच्चों का लिखना मूलतः परीक्षाओं में प्रश्नों के जवाब लिखने तक ही सीमित हो जाता है। फिर भी मुझे लगता है कि प्राथमिक कक्षाओं में बच्चे ज़्यादा निर्भीकता से अपने विचार लिख पाते हैं। उच्च प्राथमिक कक्षाओं में मुझे उनकी हिचक थोड़ी और अधिक

लगी। दूसरी, तीसरी, चौथी के बच्चे ग़लती को लेकर इतने कॉन्शस नहीं होते हैं। वो लिखते हैं, ग़लत हो या सही। लेकिन उच्च प्राथमिक कक्षाओं में ये एक अलग तरीक़े की चुनौती है कि उनपर सही लिखने का इस तरह का दबाव बन गया होता है कि वो लिखने से ही दूर हो जाते हैं।

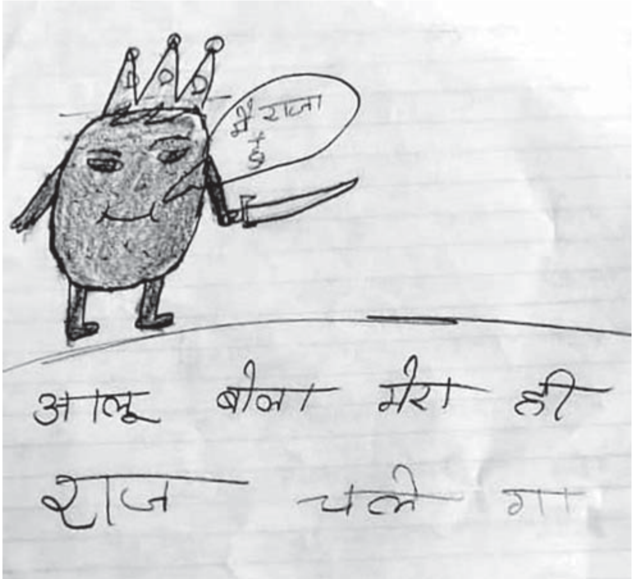
नक़ल का दूसरा असर यह है कि उनका लिखना यांत्रिक हो जाता है। उसमें उनके अनुभव, उनका मन, उनकी कल्पनाएँ, सोच-विचार, आदि की जगह ही नहीं होती। यह वैसा ही है, जैसे इतिहास के ही किसी पाठ को बोर्ड से लिखवा दिया जाए। बच्चा कहीं कुछ कोरिलेट नहीं कर पाता है, और इन सबसे ही लिखने के प्रति अरुचि बनती है, अलगाव होता है और नीरसता जगह बनाने लगती है। उसके लिए यही मान्यता बन जाती है कि शिक्षक जो लिख देगा, वही उसे लिखना है। अपने मन से और अपनी सोच, कल्पना से वो नहीं लिख पाता।

एक और चीज़ कि सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में हम बच्चों के साथ बहुत बात नहीं कर पाते हैं। हमारे पास उपयुक्त सवालों की घोर कमी है। जब इतिहास के बारे में हम बच्चों से बातचीत कर रहे थे तो उनके पास सवाल नहीं थे और शिक्षकों के पास भी बच्चों से पूछने के लिए उपयुक्त सवाल नहीं थे। हम बस टैक्स्ट तक सीमित रहते हैं, उसी पर बात करते हैं, उसे ही हम समझाते हैं। एक बात और, यह सोच बहुत पहले से चली आती है कि मौखिक बातचीत करेंगे तो बच्चों को लिखना नहीं आएगा। हालाँकि, बहुत-से भाषा शिक्षा विशेषज्ञ इसके ख़िलाफ़ बहुत मज़बूत तर्क देकर मौखिक भाषा का लिखना सीखने के लिए महत्त्व रेखांकित करते हैं। लेकिन मौखिक बातचीत हो पाए उसके लिए सही सवालों, मुद्दों की भी कमी है।

समर कैम्प का एक अनुभव बताना चाहूँगा। समर कैम्प में तीसरी, चौथी, पाँचवीं के, और दो-चार छठी कक्षा के बच्चे भी थे। हम कहानी बना रहे थे। हमने तय किया कि बारी-बारी से सब बोलेंगे और हर एक वाक्य बोर्ड पर लिखेंगे। एक बच्चे ने कहा कि जंगल में एक राजा था। अगले बच्चे ने कहा कि वह बहुत दयालु था। अगला कथन था, एक दिन राजा शिकार खेलने



चित्र : हीरा धुर्वे



गया। अब कहानी आगे नहीं बढ़ पा रही थी। हमने कहा, "सोचो, राजा बहुत दयालु था, वो जंगल में शिकार करने गया फिर क्या हुआ होगा!" बच्चों ने कहा कि शिकार करने वाला वाक्य हटाते हैं। बहुत दयालु था इसके बाद से चालू करते हैं।... उसके राज्य में अकाल पड़ा तो उसने अपने मंत्रियों को बुलाया। फिर उसने कहा कि अकाल पड़ गया है, इसके लिए हम लोग इस समस्या को कैसे हल करें? हल था कि जो अनाज के व्यापारी हैं, उनके पास जो अनाज है, उसको लिया जाए और जनता में बाँट दिया जाए। ये एक तर्क बनता है कि राजा उदार था तो राजा ने उदारता का क्या काम किया? यह तार्किकता बच्चे समझ पा रहे थे।

जब समूहों में कहानी बनाकर लिखने की बात आई, तब बोर्ड पर जो कहानी लिखी थी, उससे अलग कहानी एक ही समूह बना पाया। मुझे लगता है कि लिखने में हिचक ज़्यादा है कि कहीं हम ग़लत न लिख दें। लेखन एक निजी प्रक्रिया है। सवाल-जवाब लिखना और कोई कविता-कहानी लिखना, इन दोनों में अन्तर है।

अभी कुछ टेस्ट पेपर लेकर मैं एक विद्यालय गया था, वहीं आँगनाबाड़ी भी चलती है। कक्षा 4 के बच्चों को टेस्ट पेपर दिए थे। इस कक्षा में एक छोटी बच्ची भी आई। उसने बार-बार मुझसे कहा कि मुझे भी टेस्ट पेपर दीजिए। वह आँगनबाड़ी की थी मैंने उसे कुछ काम दे दिया। जब मैं कक्षा में था, उस दौरान कई बार वो आई और एक लाइन लिखकर दिखाती थी। एक आम बनाकर एक लाइन खींचकर पूछती, "कैसे सर, ठीक है, सर, ठीक है?" बच्चों को एक लकीर खींचकर भी काफ़ी ख़ुशी मिलती है। हमें लेखन को इसी तरह से लेकर जाना है। अकसर अक्षरों की सुघड़ता, शुद्ध-अशुद्ध में हम इतना फँस जाते हैं कि बच्चे का लिखने का आनन्द ही ख़त्म हो जाता है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि वर्तनी की अशुद्धियाँ स्थाई नहीं होंगी। वो धीरे-धीरे दूर होंगी ही।

प्रतिभा : मन का लिखना, आनन्द आना, जीवन से जुड़ा हुआ लिखना, लिखने के अवसर होना, ग़लतियों को देखने का नज़रिया, उनके लिए जगह, आदि से बच्चे का लिखने को लेकर डर कम होता है। खजानजी, आप बताएँ कि प्राथमिक और उच्च प्राथमिक, दोनों में लिखने की चुनौतियों को दूर करने के लिए हम क्या प्रयास करें, कैसे अवसर, कैसा माहौल बनाएँ कि कुछ बेहतर हो पाए?

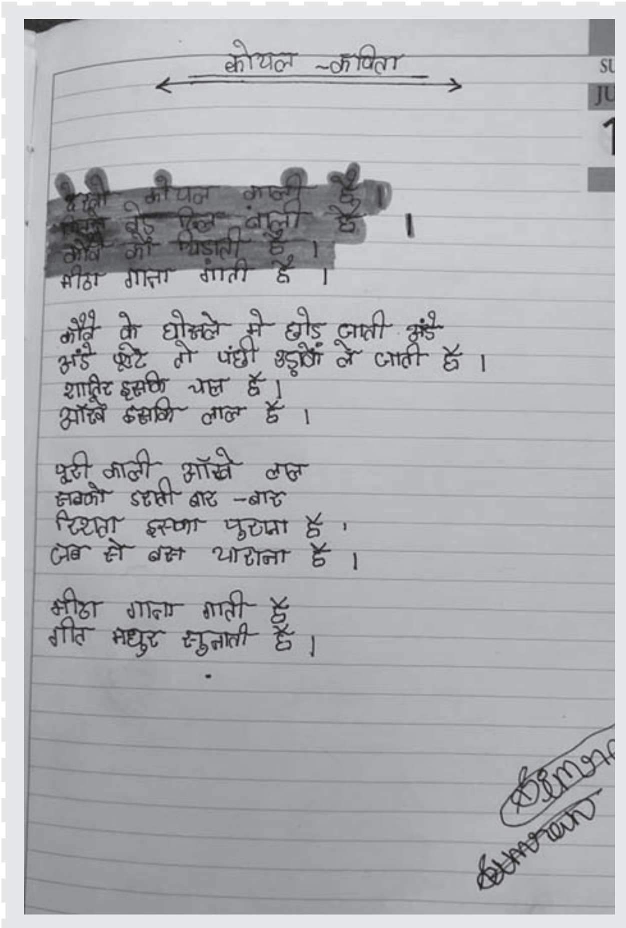
खजान : यह समझना ज़रूरी है कि हम लिखना किसको मान रहे हैं। कभी-कभी यह समूची प्रक्रिया आरम्भ से ही यांत्रिक होती है। ये एक ख़ास तरीक़े की परम्परा है। इसमें बच्चों से बातचीत नहीं होती और भाषा के कालांश में वो सारी प्रक्रियाएँ नहीं होतीं जो बच्चे को लिखने और सोचने की ओर ले जाती हैं। ज़ोर इस बात पर रहता है कि सारे लिपि चिह्न सुडौल, सुन्दर लिखने आ जाएँ। सुलेख, इमला व सवालों के तय जवाब लिखने आ जाएँ। लिखने की ये जो

सेट ऑफ़ प्रैक्टिसेस हैं, ये कहीं-न-कहीं सोच को कुन्द करती हैं। फिर दूसरा सवाल ये उठता है कि लिखें तो क्या लिखें? बात दरअसल यह है कि एकदम से लिखना नहीं आ जाता है। यह एक लम्बी प्रक्रिया का नतीजा होता है और उसी प्रक्रिया में ये कौशल धीरे-धीरे विकसित होता है।

यह मान लिया जाता है कि यदि बच्चों को बहुत सुन्दर, सुडौल तरीक़े के लिपि चिह्न बनाना, बोर्ड पर लिखी इबारत को उतारना, स्मृति-आधारित चीज़ें, जैसे प्रश्न का उत्तर, आ गईं, तो उसे लिखना आ गया। पर क्या यह उचित है? जैसे ही बच्ची को ख़ुद से सोचकर, ख़ुद की भाषा में अपनी सोच को अभिव्यक्त करना है, लिखित स्वरूप में भी करना है तो फँसावट हो जाती है। ऐसा लिखना, जिसमें यांत्रिक प्रक्रियाएँ ही होती हैं, उन अभ्यासों में बच्चे के मानसिक औज़ार ज़्यादा काम में नहीं आते। वहाँ कुछ स्मृतियाँ और गत्यात्मक कौशल ही काम में आते हैं। मगर जिसको हम स्वतंत्र रूप से लिखना, मन से लिखना या किसी उद्देश्य के लिए लिखना कहते हैं, यह क़ाबिलियत आहिस्ता-आहिस्ता ही आती है। मुक्तिबोध अपनी पुस्तक *एक साहित्यिक की डायरी* के पहले आलेख 'तीन क्षण' में कहते हैं कि लिखने के लिए, मन से लिखने के लिए सबसे पहली ज़रूरत है– जीवन के बेहद उत्कट अनुभव होने चाहिए। ऐसे अनुभव जो हमको बेचैन करते हैं, अन्दर से छटपटाते हैं अभिव्यक्त होने के लिए। यह अनुभव होने ज़रूरी हैं, वरना कोई लिखेगा क्या और कोई बोलेगा क्या? क्योंकि हम ख़ुद को बोलते हैं, ख़ुद को लिखते हैं। इस दृष्टि से यदि हम शिक्षण देखें तो भाषा शिक्षण में क्या हम बच्चे की क्रियाओं, अनुभूतियों, जीवन जगत के उसके अवलोकनों, उसकी महसूस की गई दुनिया को भाषा के दायरे में लाते हैं, क्या उनको जागृत करा पाते हैं? भाषा के चारों कौशल–सुनकर समझना, बोलकर व्यक्त करना, पढ़ना, लिखना–आपस में जुड़े हुए हैं। भाषा कालांश में अगर मौखिक भाषा पर काम किया गया है, बच्चे की अनुभूति की दुनिया को शब्द दिए गए हैं और उसे अगर लिपि का बुनियादी ज्ञान हो गया है तो छोटे बच्चों को अपनी बात व्यक्त करने में कोई दिक़्क़त नहीं होगी। बच्चों के पास कुछ शब्द होते हैं, और ये



चित्र : अंतरिक्ष



लोग, सभी अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों से दुनिया की अनुभूति करते हैं। लेकिन इनकी एक सीमा है। एक समय के बाद इन अनुभवों में बहुत विस्तार नहीं होता। यहाँ दूसरों से बातचीत और पढ़ने की भूमिका अहम है। जब हम दूसरे के अनुभव पढ़ते हैं, समझते हैं, तब हमारे अनुभव, समझ और भाषा, सभी का विस्तार होता है। ये अनुभूति और अनुभव की दुनिया को बढ़ाते हैं, शब्दों के जो नए-नए अर्थ इससे जुड़ते हैं वो अभिव्यक्ति को धारदार बनाते हैं, समृद्ध करते हैं। कला का दूसरा क्षण तब होता है जब अपने अनुभव को मौखिक या लिखित रूप में व्यक्त करने में मन में सोचने की, चिन्तन की प्रक्रिया चलती है। अभिव्यक्ति का एक ख़ाका पहले मन के अन्दर बनता है और वो इस रूप में बनता है कि इस स्मृति के उस मॉड्यूल से स्मृति का कोई कतरा अलग हो रहा होता है। भाषा के मॉड्यूल से भाषा के कुछ शब्द पेश होते हैं कि व्यक्त करने के लिए क्या होना चाहिए। तीसरे क्षण में जब हम दिमाग़ में बनी कल्पना या फैंटेसी को शब्दों में बाँधते हैं, तब उनमें फिर बदलाव होते हैं। वो ऐसे भी हो सकते हैं कि उसके लिए कुछ मुकम्मल शब्द नहीं मिल रहे हैं। शब्दों की अपनी तासीर होती है– कोई बहुत भारी शब्द चाहिए, कोई बहुत खुरदरा, या मखमली शब्द चाहिए। मतलब आप उस शब्द की टोनल क्वालिटी भी देखते हैं, आप उसकी छुअन देखते हैं। क्रिएशन के लिए बहुत ज़रूरी होता है कि क्या हमारे पास इस तरीक़े का शब्द भण्डार है जो हमारी अभिव्यक्ति में जल्दी से सामने आता है? कुछ बदलाव समाज के नॉर्म / नियम के अनुसार भी होते हैं। मन में जैसा ख़ाका बनाया है, उस फ़ॉर्म में सबकुछ नहीं लिख सकते। कुछ शब्द बहुत मायने रखते हैं। बातचीत के ज़रिए हम और अधिक शब्दों से बच्चों को वाक़िफ़ करा सकते हैं। भाषा दर्शन में एक नाम रूप जगत है। इस दुनिया में हर चीज़ का नाम है और जब नाम हमें पता चल जाता है तो उससे जुड़ी हुई कुछ अवधारणाएँ कहीं-न-कहीं जागृत हो जाती हैं और हमारी समझ का हिस्सा बनती हैं। तब व्यक्त करने में कोई ख़ास समस्या नहीं आती बजाय इसके कि जो बाधाएँ क्रिएट की गईं कि ग़लत नहीं लिखना है, या ये भी लिखना है।

आगे की कक्षाओं में हम अलग-अलग तरह के टैक्स्ट, और बच्चे की अनुभूति की दुनिया से बाहर के संसार का कितना एक्सपोज़र बच्चों को दे पाते हैं? क्योंकि छोटे बच्चे हों या बड़े

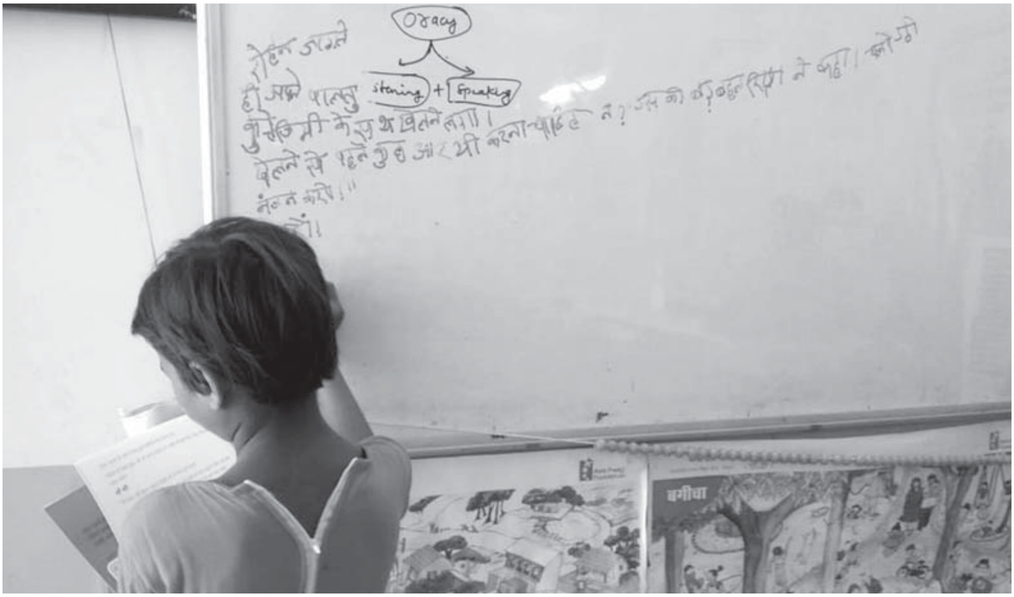
अभिव्यक्त होता है, कुछ में शब्दों की कमी आ जाती है। कहीं-कहीं पर उसमें मातृभाषा के शब्द हैं, कहीं-कहीं उसमें बड़े-बड़े विवरण आते हैं कि उसके लिए कोई एक मुकम्मल शब्द नहीं मिला ऐसा करके उसमें तमाम तरीक़े के बदलाव आते हैं। शब्दबद्ध होने के बाद एक रचना हमारे सामने आती है, लेकिन उसके बाद भी उसमें ख़ूब सारे संशोधन हो सकते हैं। पूरी बात है कि लिखने से पहले, लिखने के दौरान, और लिखने के बाद की पूरी एक प्रक्रिया है।

प्रतिभा : गुलज़ारजी, आपने कहा कि बच्चों को लिखने के कितने अवसर दे रहे हैं और कैसे उनके शब्दों की जगह बन रही है। लेकिन शिक्षकों पर लर्निंग आउटकम का भी दबाव होता है। आप लर्निंग आउटकम और स्वतंत्र रूप से लिखना सीखना, इन्हें कैसे देखते हैं?

गुलज़ार : लर्निंग आउटकम होते हैं। लेकिन हमें सिर्फ़ आउटकम पर ही ध्यान नहीं देना है, हमें लिखने की प्रक्रिया पर भी ध्यान देना है। हम लेखन को एकाएक शुरू नहीं कर सकते। मौखिक भाषा विकास, लेखन कौशल में मददगार होता है। पहले मैं मौखिक भाषा के लिए बच्चों के साथ छोटी-छोटी कविताएँ करता हूँ, इनपर बच्चों से बात होती है। मसलन, आम पर एक कविता की थी उसपर बात हुई। आम का रंग कैसा होता है, उसका स्वाद कैसा होता है, क्या उसकी चटनी भी बनाते हैं? कई बार विषयान्तर भी हो जाता है, लेकिन यह बातचीत उनके दिमाग़ में नई छवि / छवियाँ बनाने में मददगार होती है, ऐसा मुझे लगता है। कक्षा 1 में बातचीत भी काफ़ी होती है, लेकिन कक्षा 2 में, मैं बच्चों को इस बातचीत के बाद लिखने को भी कहता हूँ। जैसे– आम का चित्र बनाओ, इसपर कुछ वाक्य लिखो और बच्चे लिखते हैं कि आम मीठा होता है, इसका रंग पीला होता है। कुछ छोटी-छोटी चीज़ें भी उनके साथ करता हूँ। मसलन, अपना, अपने दोस्त का नाम लिखो, अपने मम्मी-पापा का या आसपास की वस्तुओं के नाम, यानी किचन में क्या-क्या होता है, लिखकर आना। आज मोबाइल के बारे में बच्चे लिख रहे थे। जो बच्चे लिखते हैं, उसको वे पढ़कर भी सुनाते हैं। पढ़कर सुनाने में से कुछ ग़लती अगर होती है तो उसको देखते हैं। जैसे– आम फलों का राजा है। मान लीजिए वहाँ राज लिख दिया है, पढ़कर बताओ, ‘राज’। अरे, ये राज हो गया तो उसमें क्या जोड़ोगे। ‘आ’ की मात्रा जोड़ेंगे तो ‘राजा’ हो जाएगा। यह पठन में भी काम आता है और लेखन में भी। यह शुरुआत है, बाद में जब धीरे-धीरे बच्चे दक्ष होते जाते हैं, नई गतिविधियाँ करते हैं।



चित्र : हीरा धुर्वे



प्रतिभा : एक और सवाल है कि लिखने में शुद्धता का आग्रह है इसे कैसे देखें? ग़लतियों को कैसे देखें? लिखने को देखने का शुद्धतावादी नज़रिया कई दफ़ा बच्चों को डरा देता है, इसपर मृत्युंजय आपकी राय जानना चाहेंगे।

मृत्युंजय : कृष्ण कुमार कहते हैं कि लिखना बातचीत का ही विस्तार है। माने, बोलने वाली जुबान का ही विस्तार है लिखना। इस बात को थोड़ा और ध्यान से समझा जाना चाहिए। इस लिहाज़ से कि बच्चा शाला में जो भाषा सीखकर आता है, उस भाषा को कैसे सीखता है? ग़लतियाँ यहाँ भी होती हैं और उसके माता-पिता या समाज या जो भी अगल-बग़ल के लोग होते हैं वो उन ग़लतियों के पैटर्न को देखकर उसको अवसर देते हैं ताकि वो अपने-आप को सुधारता और भाषा सीखता चले। लेकिन ये काम हम लिखने में नहीं करते। लिखने में, ग़लतियाँ होंगी ही, पर ग़लतियों को स्वाभाविक मानना, उनसे एक पैटर्न चुनना और उसके ज़रिए धीरे-धीरे सिखाना, इसकी जगह हो। वाचिक भाषा में यह प्रक्रिया समाज और परिवेश बच्चे के साथ करता है। लेकिन जैसे ही लिखने की बात आती है, वैसे ही यह काम बन्द हो जाता है। दूसरा बिन्दु यह है कि लिखना स्थाई होता है, एक बार लिख दिया तो वह मिटेगा नहीं। तीसरा, लिखने का मूल्यांकन होता है, और लगातार होता है। बोलने का मूल्यांकन उस तरह से नहीं होता। और अगर होता भी है तो बच्चे में उसकी दक्षता है, इसलिए यहाँ वह मूल्यांकन से इतना डरता भी नहीं है। लेकिन लिखने के साथ जो मूल्यांकन है कि अब लिख दिया है, इसपर नम्बर मिलेगा या नम्बर कटेगा। एक तरह से लिखने में ग़लती करने की छूट नहीं होती। इस लिहाज़ से लिखना कक्षा के भीतर एक नीरस, बेजान-सी गतिविधि बनकर रह जाती है। अब आप सोचिए कि उच्च प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं के बच्चे कविता की सप्रसंग व्याख्या पहले भी लिखते थे, आज भी लिखते हैं। अब सूरदास की सामान्य-सी कविता है जो बच्चों को समझ में भी आ रही है कि,

मैया, मैं तो चंद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं॥

सरल-सी बात है। हर बच्चा इस अनुभव को जानता है। इससे बहुत अच्छे-से कनेक्ट कर सकता है। इसके इर्द गिर्द बहुत कुछ बुन सकता है। लेकिन भावार्थ करना है, कवि परिचय देना है। हमने भी परिचय रटा था और अभी भी रटा जाता है।

बाक़ी साथियों ने भी कहा ही कि एक, बच्चे क्या लिख रहे हैं और दूसरा, किसके लिए लिख रहे हैं? बच्चे का लिखना अध्यापक-केन्द्रित होता है। ये लिखा जा रहा है, इसको कोई देखेगा और इसपर मार्क करेगा या इसपर कोई शाबाशी मिलेगी, इसे बदला जाना चाहिए। हम कहते हैं कि वो अपना विचार नहीं व्यक्त कर पा रहा है, लेकिन वह विचार इसलिए व्यक्त नहीं कर पा रहा है क्योंकि विचार व्यक्त करने की उसे छूट ही नहीं है। उसको उन सारे विषयों पर लिखने की एक तरह से इजाज़त ही नहीं है, जिनपर वो लिखना चाहता है या बिना डरे लिख सकता है। दूसरी बात यह है कि क्या लिख रहे हैं? इससे जुड़ी हुई बात यह है कि परीक्षा से लिखने का सम्बन्ध हटे, या कम हो, तो शायद लिखने में और तत्त्व भरा जा सकेगा।

प्रतिभा : दीक्षा, आप बच्चों की लेखन की ग़लतियों को किस तरह देखती हैं और कैसे उनपर काम करती हैं? क्या अप्रोच होती है आपकी?

दीक्षा : जब बच्चे लिखते हैं तब ग़लतियाँ करते ही हैं, लेकिन मैं ग़लतियों पर फ़ोकस नहीं करती। मैं उनके विचारों को देखती हूँ। यह देखती हूँ कि बच्चों ने लिखने की कोशिश की है। अलग-अलग तरह के काम पर अलग फ़ीडबैक होता है। मुझे लगता है, यह ज़रूरी भी है। लेकिन यह फ़ीडबैक दिया कैसे जाए, यह भी सोचना ज़रूरी है। बच्चे ने ख़ुद कुछ लिखा होता है तो उसमें मैं ग़लतियों को ज़्यादा तवज्जो नहीं देती। यदि कुछ किताब से देखकर लिखा है तो कहती हूँ कि एक बार देख लो, सही लिखा है? कहीं कुछ ग़लती तो नहीं हुई? कभी-कभी कुछ ग़लतियों पर बातचीत भी होती है, कभी बाद में ठीक कर दिया जाता है ताकि बच्चे देखें व सही पढ़ें और बाद में ख़ुद-ब-ख़ुद ग़लती ठीक कर लें। ऐसे धीरे-धीरे बच्चे सीखते चले जाते हैं। ग़लती पर फ़ीडबैक आगे बढ़ने में मदद करें न कि बच्चे को हतोत्साहित करें।

प्रतिभा : पाठ्यपुस्तकों के अलावा वो कौन-से साधन हैं, कौन-सी प्रक्रियाएँ हैं, क्या वो तरीक़े हैं जो आप बच्चों को लिखना सिखाने या लिखने की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने के लिए अपनाते हैं?

गुलज़ार : पाठ्यपुस्तक एक संसाधन है लेकिन वो सीमित है। बच्चे रोज़ पाठ्यपुस्तक देखते हैं, यह उनके लिए कभी-कभी उबाऊ हो सकता है। ज़्यादा-से-ज़्यादा पुस्तकें बच्चों के पास हों, और छोटे बच्चों के लिए एक-दो पंक्तियों वाली ढेर सारी चित्रात्मक पुस्तकें। फिर बच्चों के साथ बातचीत होनी चाहिए। यह बातचीत खिलौने, किसी फ़िल्म या फिर कुर्सियाँ, टेबल, घड़ी, चाक, जैसी कक्षा में उपलब्ध या घर में उपलब्ध वस्तुओं पर हो सकती है। पाठ्यपुस्तकों से अलग और हमारे आसपास के बहुत सारे ऐसे संसाधन, जिनसे बच्चे बहुत अच्छे तरीक़े से परिचित हैं। हाँ, वहाँ पर एक चीज़ ध्यान रखनी चाहिए कि सन्दर्भ से बाहर यानी



चित्र : अंतरिक्ष

कि उनकी पहुँच से बाहर विषयवस्तु न हो, तो ज़्यादा अच्छा है। बहुत मज़ा करेंगे बच्चे, अगर जान-पहचान की चीज़ें हों। मसलन, एक बार एक बच्ची अपनी मम्मी के बारे में लिखकर लाई थी। अब उसकी मम्मी जीवित नहीं हैं लेकिन उसने लिखा। उसने बिन्दुवार उसमें अपनी बात लिखी थी।

प्रतिभा : बिना भाषा के पुल पर चढ़े आप किसी भी विषय तक पहुँच नहीं सकते। ये जो फ़र्क़ होता है भाषा में लिखना, मतलब हिन्दी में लिखना, या किसी भी लैंग्वेज में और किसी दूसरे विषय में लिखना, दोनों में क्या फ़र्क़ है, क्या समानता है? कैसे देखते हैं आप इसको?

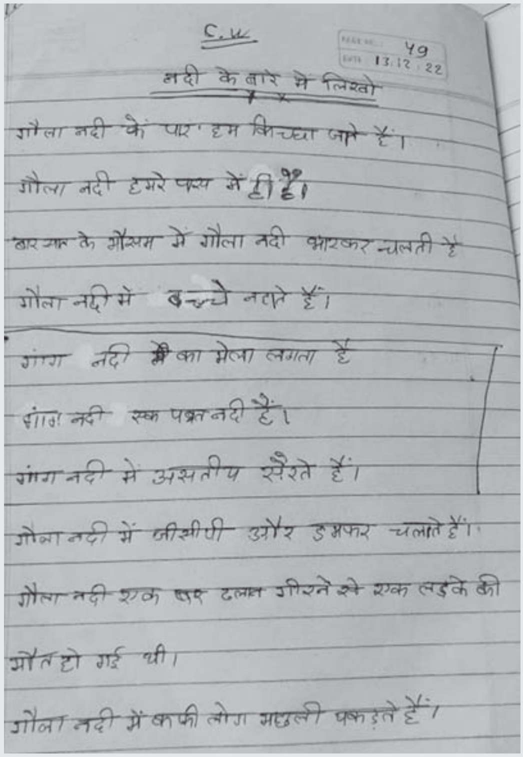
दीपक : किसी भी बच्चे के मन में जो सन्दर्भ हैं, दरअसल भाषा उन्हीं की एक अभिव्यक्ति है। सोचते-समझते हम एक सन्दर्भ को आकार देते हैं तो धीरे-धीरे लिखना सम्भव होने लगता है। लेकिन अगर यह खण्डित भाषा है, यानी हम कभी 'म' सिखा रहे हैं, कभी 'ए' की मात्रा सिखा रहे हैं, कभी 'ज' सिखा रहे हैं, इससे ज़ेहन में कोई सन्दर्भ ही नहीं बनता। तब मौखिक विचार ही नहीं आ पाते हैं, लिखना तो बहुत दूर की बात है। अगर हम मेज़ बता रहे हैं तो बच्चे जल्दी से उसे लिख लेंगे, लेकिन हम म, ए, ज़ कहें, तो मुश्किल होगी ही। लिखना ख़ुद को मुक्त करने का एक तरीक़ा भी है। अपनी तमाम गिरह-गाँठें हैं, उन्हें खोलने का भी एक तरीक़ा होता है। मैं कहूँगा, यह मनुष्य बनने का भी एक तरीक़ा है। कई बार होता है कि जैसे मैं शब्दों के साथ जब खेलता हूँ या शब्दों के साथ जब कुछ लिख रहा होता हूँ तो वे मुझे खोलते हैं, और मैं उनमें अपने सारे अर्थ खोल देता हूँ। साहित्य लिखना, कविता-कहानी लिखना हो, या कोई निबन्ध लिखना या किसी चीज़ पर आलेख लिखना या इतिहास लेखन हो, इसमें भाषा का जो सौन्दर्य है, सौष्ठव है, और भाषा का जो बोध है, मतलब किस शब्द के साथ कौन-सी चीज़ ज़्यादा अभिव्यक्त होगी, इसका हमें ख़्याल रखना चाहिए कि उसका टोन क्या है। अगर हम कोई रिपोर्ट कर रहे हैं, कोई अख़बारी भाषा लिख रहे हैं, उसमें फिर बहुत सारी चीज़ें ऐसी नहीं होनी चाहिए जो आम पाठकों से बहुत दूर हों और उसको एक रिपोर्ट पढ़ने के लिए दस बार डिक्शनरी देखनी



चित्र : हीरा धुर्वे

पड़े। और इसमें भी कोई शक नहीं कि अगर कोई नए शब्द नहीं होंगे या कोई नई तरह की बातें नहीं होंगी तो फिर उसकी जो भाषिक समृद्धि है वो शायद उतनी बेहतर नहीं बन पाएगी।

दूसरा, जब भी हम कुछ लिख रहे होते हैं तो माँग होती है कि उसका कुछ क्रम हो। यह ज़रूरी है। लेकिन कई शिक्षक साथी या कहीं हम लोग भी इस बात पर बहुत फ़ोकस करते हैं कि शब्द अच्छे होने चाहिए। अगर शब्द ही होते तो फिर कोई भी शब्दकोश दुनिया का सबसे अच्छा साहित्य होता, लेकिन शब्दों से साहित्य नहीं रचा जा सकता। उसके लिए जो ज़रूरी संकल्पनाएँ हैं, संवेदना है, आपका जो बोध है, ये सारी चीज़ें मिलकर किसी भी देखे हुए को, आपके दृष्टिकोण को विशिष्ट बनाती हैं। सारे लोग उन्हीं चीज़ों को देखते हैं, लेकिन सारे लोग जब अपने-अपने निजी विचारों को लेकर आते हैं तो उनका पूर्व अनुभव, उनकी संवेदना, उनका दायरा, उनके लेखन को अलग करता है। और यही इसकी विशिष्टता है कि अगर एक ही विषय पर दस लोग लिख रहे हैं तो दसों लोग अलग-अलग लिखेंगे। भले ही कुछ बेसिक्स उनके मिलेंगे, लेकिन अभिव्यक्ति उनकी अलग होगी क्योंकि बोध में, संस्कार में, पद, परिवेश, और अभ्यास में हम दरअसल सपनों का अभ्यास करते होते हैं। हम जिन शब्दों के अभ्यास करते हैं, वे भी हम बार-बार उपयोग करेंगे। लेकिन तब शब्दों के प्रति ज़िम्मेदारी का एहसास भी होना होगा। मुझे लगता है कि आप अपने लिखे हुए के बीच, अपने शब्दों, अपने जीए हुए के बीच, अपने कहे हुए के बीच जो उदासियाँ हैं, जीवन के जो दु:ख-संत्रास हैं, जो आनन्द है, जो सुख है, उनकी जितनी आपसदारी होती है, शायद आपका लेखन उतना ही प्रामाणिक और अच्छा होता है। अगर यह बच्चों के साथ भी होने लगे कि बच्चे जो सोचें, जो लिखें, उसे कह सकें,

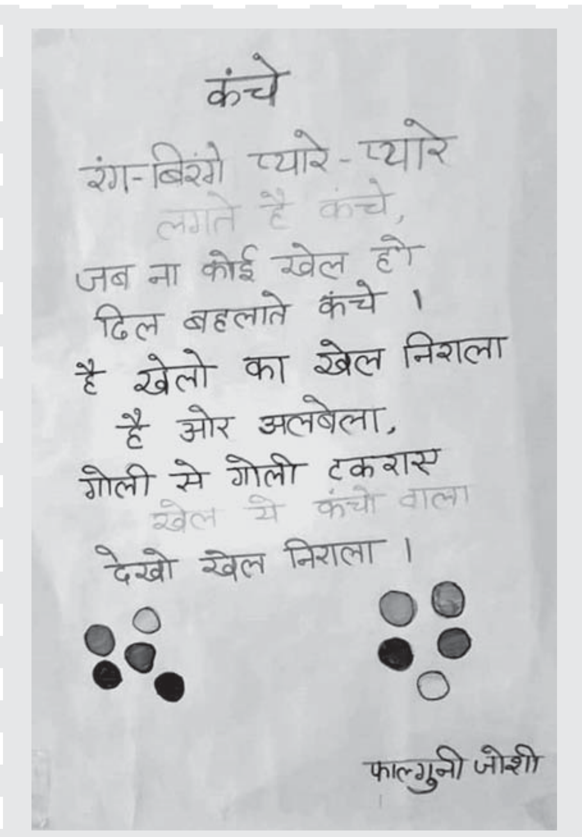


इससे बड़ी ख़ुशी उन्हें क्या होगी! जैसा सर ने कहा कि उसे अपनी माँ पर लिखना था और माँ पर लिख करके वो ले आई। अभी हम जब असेसमेंट टूल्स के लिए गए थे तब एक बच्ची ने कहा कि उसे 'ए' की मात्रा नहीं आती है। तब हमने 'रेल चली, भाई रेल चली' कविता पढ़ी। उसने सही पढ़ा। मैंने पूछा कि 'र' और 'ल' मिलाओ तो क्या बनता है? रेल बनेगा क्या? उसे समझ आ गया, तब उसने मुझे कम-से-कम दसियों ऐसे शब्द दिखाए जिनपर 'ए' की ही मात्रा लगी हुई थी। यदि हम लेखन को लिपि, वर्ण, और मात्राओं के ज्ञान से महदूद करेंगे तो वो अरोचक और अझेल बनता ही जाएगा। बच्चे का मुक्त लेखन थोड़ा अनगढ़ होगा, थोड़ा अशुद्ध होगा, ठीक है, लेकिन यह उसके मन की अभिव्यक्ति तो होगी। शुद्धता का आग्रह है और हम बड़े अकसर ग़लतियों पर ही ध्यान देते हैं। यह ध्यान उसे डिटैच करता है, एलिनेट करता है, ये एलिनेशन बनता जाता है

उसका। इससे लिखने के प्रति उसकी अरुचि एक शाश्वत अरुचि के तौर पर बदल जाती है। ‘सादर’ कहाँ लिखना है, ‘सेवा में’ कहाँ लिखना है, ‘डेट’ कहाँ लिखना है, ‘महोदय’ कहाँ लिखना है, हम इतनी यांत्रिक प्रक्रियाओं में उसे बाँध देते हैं कि उसकी जो स्वाभाविक और मज़ेदार अभिव्यक्तियाँ होती हैं, वो बँध जाती हैं।

प्रतिभा : मुख्य बात यह है कि बच्चे को भरोसा हो कि वो जो लिख रहा है उसको जिसके सामने सौंपेगा वो उसे उसी प्रेम से, उसी भाव से पढ़ेगा, जिस भाव से उसने लिखा है। जैसे ही बच्चे को ये भरोसा होता है उसके लिखने में आत्मविश्वास आता है और फिर लिखने को लेकर उसका डर, हिचक थोड़ी कम होती है। मृत्युंजय, आप उच्च प्राथमिक की बात कर रहे थे वहाँ विधाएँ भी शामिल होने लगती हैं न!, विधाओं में बच्चे किस तरह आगे बढ़ें और लिखने के दौरान किस तरह से उनको मदद हो? किस तरह की चुनौतियाँ उनको आती हैं?

मृत्युंजय : उच्च प्राथमिक में कविताएँ, कहानियाँ और गद्यांश भी पाठ्यक्रम में होते हैं। आमतौर पर हम इन विधाओं को जकड़न में देखने के आदी हैं। कविता है, कविता का ढाँचा है, कविता से कुछ सीख मिलती है, इसपर बहुत ज़ोर रहता है। पाठ, पाठ होता है। पाठ के पीछे प्रश्न होते हैं, जिनको हल करके परीक्षा तक जाना होता है। जैसा मैंने कहा, ऐसे में बच्चों पर मूल्यांकन का अतिरिक्त बोझ हो जाता है। वे बचपन से कहानियाँ सुनते भी हैं और बुनते भी। प्राथमिक स्तर के बच्चों के पास भी तरह-तरह की कहानियाँ होती हैं और वे कहानियाँ बनाते भी हैं। लेकिन पाठ्यक्रम की कहानी उसे शुद्ध क़िस्म की किसी चीज़ की तरह बताई जाती है। बच्चा उससे छेड़छाड़ कर सके, उसमें अपनी कल्पना जोड़ सके, यह जगह ही नहीं होती। कोई कहानी है और बच्ची से कहा गया है कि चलो इसको आगे बढ़ाते हैं तो उसके लिए उस विधा से एक तरह की दोस्ती कर पाना ज़्यादा आसान होगा। इसी तरह से कविता निष्कर्षों या सीखों पर केन्द्रित नहीं होनी चाहिए। कविता-कहानी या अन्य गद्य के टुकड़े हैं, उनमें जो प्रक्रियाएँ चल रही हैं, उनसे बच्चा खेल पाए, उनको बदल पाए और अपनी चीज़ का निर्माण कर पाए। देखिए, रचने का बड़ा आनन्द है। हर स्तर पर इंसान को रचने का आनन्द आता है। शर्त यह है कि उस रचने को स्वीकार किया जाए, न कि बार-बार उसे ग़लत-सही, अच्छे-बुरे के वर्ग में रखा जाए। इस तरह का मूल्यांकन मददगार नहीं होता। बच्चा इन विधाओं की प्रक्रियाओं को समझे, उसे एहसास हो कि वो इन विधाओं की इन चीज़ों को बदल सकता है तो वो आगे जाएगा। मैंने कविता की बात की है, अब उसकी व्याख्या को ही लीजिए।



कोई ज़रूरी नहीं कि उसकी वही व्याख्या हो जो उसके शब्दार्थों से निकल रही है। बच्चा उसमें कोई अपनी कविता जोड़ सकता है या उसमें से कुछ शब्द लेकर कोई नई कविता बना सकता है। अगर उसको ये छूट है तब वो कविता ज़्यादा बेहतर तरीक़े से शायद समझ भी पाएगा और लिख भी सकेगा। लिखना क्या है? लिखना एक्सटेंशन है ख़ुद को अभिव्यक्त करने का, चीज़ों को समझने का। अगर चीज़ों की समझ बनेगी तो लिखने में भी वो दिखेगी। अगर चीज़ों की जड़ क़िस्म की समझ बनेगी तो लिखना भी जड़ क़िस्म का ही होता चला जाएगा। वाचिक भाषा और लिखित भाषा, ये एक दूसरे के पूरक हैं, और एक दूसरे को परिवर्तित करते रहते हैं, बेहतर बनाते रहते हैं, लेकिन अगर कहीं एक जगह भी जड़ता आई, कहीं एक जगह भी स्थिर कर दिया गया तो दूसरा भी अपने-आप स्थिर होने लगता है।

प्रतिभा : कोई कुछ ख़ास बिन्दु आपमें से कोई रखना चाहे तो कह सकते हैं?

खजान : स्कूल में लिखने के जो अभ्यास होते हैं वो लिखने को एक फ़ॉर्मेट बना देते हैं। दिवाली हमारा राष्ट्रीय निबन्ध था और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अगर किसी बच्चे से ये कहा जाए कि निबन्ध लिखिए, उसके सेट पैटर्न थे। आज भी हैं, दिवाली पर लिखना है या माँ के बारे में या गाय के बारे में लिखना है। ख़ासकर गाय के बारे में वही 10 लाइनें। यह चलता चला आ रहा है गुरुओं के गुरु, फिर उनके गुरुजी ने उनके गुरुजी ने पढ़ाया। अब चिट्ठी लिखनी है। उसका भी वही प्रारूप है और यहाँ तक कि सवाल-जवाब का भी।

प्रश्न यही है कि बच्चे की अपनी भाषा, जो उसने ख़ुद अर्जित की है, उसके अपने अनुभव लिखने में उनकी जगह कैसे बने? भाषा शिक्षण



चित्र : प्रशांत सोनी

में, ख़ास करके लिखने के अभ्यास प्रारूप-आधारित ही होते हैं। पाठ का सारांश, कविता का भावार्थ, निबन्ध सभी के प्रारूप निर्धारित होते हैं। ये बहुत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। आरम्भ से मैं कह रहा हूँ कि प्री-स्कूल में भी बच्चे चित्रकारी करते हैं, लिखते हैं, बोलते हैं, अत: उसको लिखना, आहिस्ता-आहिस्ता आ ही जाएगा। कुछ मदद की ज़रूरत होती है। जैसे, ध्वनि को जोड़-तोड़कर देखना या कि अक्षर-मात्राएँ कैसे आवाज़ बदलती हैं, शक्लें बदलती है, उसका बोध कराना। यह कराना चाहिए, तभी वह लिपि



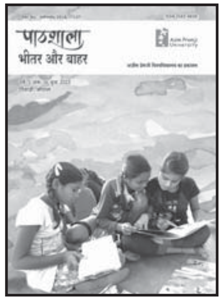
चिह्नों को समझ पाएगा। मगर संकट वहाँ से शुरू होता है कि बच्चा लिखे क्या? लिखने के अच्छे टास्क कैसे बनाए? एक मुझे लगता है कि महज़ यह कह देना, कि दिवाली पर लिखो, स्कूल, मेले पर लिखो, मदद नहीं करता। जो भी मुद्दा हो उसपर एक चर्चा आयोजित हो और तब बच्चे लिखें। इस चर्चा में हो सकता है कि 10-20 मेलों के एक्सपीरियन्स मेरी समझ का भी पार्ट बन जाएँ। अब मेले के बारे में लिखने में, मैं अपना ख़ाका बना लूँगा। हो सकता है दूसरे के अनुभव भी ले लूँ जो मैंने नहीं देखे। कोई बात नहीं, लिखने की प्रक्रिया हो रही है, लिखने की प्रैक्टिस हो रही है। इसी तरीक़े से लेखन के एक्सपोज़र भी हों। मसलन, चिट्ठियाँ लिखना है तो 10-20 चिट्ठियाँ बच्चे को पढ़ने को मिलें, ताकि चिट्ठी कैसे लिखें, यह बच्चे समझें। यदि पढ़ने और मौखिक चर्चाओं के अवसर बच्चों को मिलते हैं तब जाकर वे क्रिएशन की तरफ़ बढ़ते हैं। फिर रचना में ग़लतियाँ हो जाएँगी, लेकिन तुरन्त उसका सुधार ज़रूरी नहीं है।

एक समस्या मैंने ये भी देखी कि बच्चों के पास विचार हैं, लेकिन लिखने की गति नहीं है। पाँच-छह वाक्य लिखने बाद उँगलियाँ थक जाती हैं, मन का विचार तितर-बितर होता है और बच्चा कहता है कि बस अभी इतना ही लिखूँगा, मैं थक गया। मैं आपको यह मौखिक रूप से बता सकता हूँ। अगर वक़्त ही कम दिया गया है, अभ्यास उस तरीक़े के नहीं हैं, जो विचार को उनके संयोजन के लिए समय दें, तब भी समस्या है।

प्रतिभा : दो-तीन चीज़ें महत्त्वपूर्ण हैं। बच्चों के पास लिखने के मौक़े कितने हैं? लिखने के जितने ज़्यादा अवसर होंगे, वे लिखना सीखेंगे। दूसरा, उनकी अभिव्यक्ति पर हमारा भरोसा होना होगा। अभिव्यक्ति सुगठित हो या न हो, लेकिन नैसर्गिक अभिव्यक्ति के लिए जगह हो। बच्चों के जीवन के रंग, उनकी भाषा हम तक आए, तो हमारी दुनिया थोड़ी और ख़ूबसूरत होगी ही, लिखना इतना बोझिल नहीं होगा। जो समस्या बच्चों की है वो हम बड़ों के लिए भी है। हमें भी अभी लिखने को कहा जाए तो मुश्किल आती है। हम बात करने वाले लोग हैं। लिखने में हमें मुश्किल आती है, तो ये मुश्किल शायद इस तरह धीरे-धीरे सॉल्व होगी। आज का संवाद मुझे लगता है कि बहुत काम का रहा। आप सभी का बहुत-बहुत शुक्रिया।

पाठकों के विचार

स्कूल और समुदाय में गालियों का इस्तेमाल और हिंसा की शुरुआत, सीमा देशमुख, अंक 16



यह लेख सही मायनों में एक नया नज़रिया देने वाला लेख है, जिसकी ज़रूरत समाज के रूप में हम सभी को ही है। अकसर हम हिंसा के जवाब में हिंसा ही देखते हैं, जहाँ समतुल्य लोगों में एक गाली के आधार पर लड़ाई हो जाती है, वहीं एक गाली के आधार पर ही एक छात्र को शिक्षक से और किसी बच्चे को घर के किसी परिजन से सज़ा मिलती है। लेख यह समझाने के लिए भी पर्याप्त लगा कि ‘एक तरह की हिंसा का दमन दूसरी तरह की हिंसा से नहीं किया जा सकता है’।

इस लेख की ख़ूबसूरती यह है कि इसमें किसी मनोवैज्ञानिक पहलू पर या गालियों के पीछे के कारणों को खोदने की बजाय अपनी ज़िम्मेदारी तय करते हुए उसे रोकने के लिए उठाए जाने वाले क़दमों की बात की गई है। ‘रोको-टोको’ एक प्रभावी तरीक़ा हो सकता है, और मैं भी ज़रूर इसका प्रयोग करूँगा। यह लेख हमें एक शुरुआती आधार देता है, जिससे हम स्कूलों, समुदाय और आम जनजीवन में भी अपनी ओर से कोई पहल करने व पहले से चली आ रही इस तरह की असहजता का सीधे विरोध कर सकेंगे या कुछ ज़रूरी राय रख पाएँगे।

जुगल किशोर, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन डीडीहाट, ज़िला पिथौरागढ़, उत्तराखंड

आज के समय में स्कूल या समुदाय में गालियों का माहौल होना एक आम बात हो चुकी है। मुझे लगता है, यह वर्तमान में सभी स्कूलों में एक बड़ा मुद्दा है। आज के समय में स्कूलों में छोटे-छोटे बच्चे भी गालियों का इस्तेमाल बहुत करते हैं, चाहे उन्हें उस गाली का अर्थ मालूम हो या नहीं। एक बार मैंने अपने स्कूल में कक्षा छठवीं के बच्चों, जो पढ़ने में बेहद होशियार हैं, की आपसी बातचीत सुनी, जिसमें वे गालियों का इस्तेमाल कर रहे थे। इसके अलावा, उसी कक्षा की कुछ छात्राओं द्वारा शिकायत के रूप में भी मुझे बताया गया कि यह बच्चे अपनी बातचीत में गालियों का इस्तेमाल करते हैं और ज़ोर-ज़ोर से कक्षा में बोलते हैं। मैंने जब इन बच्चों से बातचीत की तो बच्चों ने बताया कि वह ऐसे ही मज़ाक़ में इन गालियों का उपयोग कर रहे थे। इस छोटी-सी बातचीत में मुझे समझ आया कि इन मुद्दों पर बात करना बहुत आसान नहीं है। यह भी महसूस हुआ कि बच्चों के ऐसे व्यवहार का असर अन्य बच्चों और उनके साथ पढ़ने वाली बालिकाओं पर बहुत बुरा पड़ता है। इस लेख ने मेरे कुछ प्रश्नों के उत्तर देने की कोशिश की है, व कुछ तरीक़े भी बताए हैं। निस्सन्देह लेख में सुझाई गई रणनीतियाँ और उपाय मुझे और मेरे बच्चों को इस मुश्किल से निकालने में मददगार होगें।

निधि पाठक, शासकीय हाईस्कूल नानक वार्ड, बीना, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

इस लेख को पढ़कर मालूम हुआ कि हम किस तरह जाने-अनजाने गालियों का इस्तेमाल करना और इस तरह शारीरिक-मानसिक हिंसा भी शुरू कर देते हैं। यह एक ऐसा कार्य है जो हमें बिलकुल नहीं करना चाहिए, लेकिन हम इसके अभ्यस्त होते चले जाते हैं। इससे बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। आलेख में कहा गया है कि इस मुद्दे पर लेखिका ने कई बैठकें और कार्यशालाएँ भी आयोजित कीं। ऐसे मुद्दों पर बच्चों के साथ बातचीत करना तब और मुश्किल हो जाता है, जब वे चुप्पी साध लेते हैं। बच्चों पर किसी भी तरह का दबाव बनाना भी हिंसा का ही एक रूप है। इसमें सकारात्मक परिवर्तन की अत्यधिक आवश्यकता है। बच्चे बचपन से ही अपने घर और आसपास के माहौल में गालियाँ सुनते रहते हैं। बच्चों ने यह भी माना कि माता-पिता के झगड़े में पिता, माँ को उसकी 'माँ की गाली' देकर मारते भी हैं। इस तरह की परिस्थितियों का बच्चों पर ग़लत प्रभाव पड़ता ही है और धीरे-धीरे वे भी गालियों का इस्तेमाल करने लगते हैं।

लेख में बच्चों ने कहा कि किसी को गाली देने से रोकना भी एक तरीक़े की 'चुनौती' होती है। गाली भी एक तरह की हिंसा है, यह पहले नहीं समझ में आता था। लेकिन इस विषय पर लगातार काम करने पर समझ में आया कि जिस माहौल में हम रह रहे हैं, वहाँ अच्छे शब्दों का इस्तेमाल होना चाहिए, न कि गालियों का।

यह एक अत्यन्त रोचक आलेख है। इस तरह के आलेख साझा करने के लिए सम्पादकीय टीम का धन्यवाद।

बनारसी, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, ज़िला सीकर, राजस्थान

बाल साहित्य में गुँथे मानवीय-सामाजिक मूल्य, अंजना त्रिवेदी, अंक 16



पाठशाला भीतर और बाहर का हर एक अंक बेहद महत्त्वपूर्ण होता है। इस बार के अंक में अंजना त्रिवेदी द्वारा लिखित यह लेख मन को छू गया। बाल मन बहुत कोमल और संवेदनशील होता है। उसपर किसी भी सकारात्मक अथवा नकारात्मक घटना का प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। बच्चों को जिस प्रकार का वातावरण मिलता है, उसी के अनुरूप उनके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

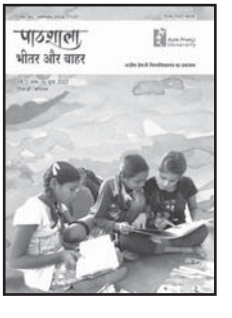
विद्यालय स्तर पर बाल साहित्य उपलब्ध होने और साहित्य में आए विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करने से बाल मन पर पड़ रहे नकारात्मक प्रभाव को कम किया जा सकता है। उन्हें उनकी चिन्तन, मनन और कल्पना की शक्ति को विकसित करने की ओर अग्रसर किया जा सकता है। बाल साहित्य द्वारा संविधान की प्रस्तावना के उद्देश्य पूरा करने की ओर बढ़ा जा सकता है। जाति, धर्म, समुदाय, जेंडर के आधार पर जो असमानताएँ हैं, उन्हें समाप्त करने के लिए विद्यालय में उपलब्ध बाल साहित्य पर चर्चा-परिचर्चा करके पूरी मानव जाति को एक वृक्ष के नीचे लाने की यह एक अनूठी पहल है।

धर्मेंद्र चौहान, सहा. अध्यापक, राज. प्राथ. विद्यालय, गजौली, विकासखण्ड भटवाड़ी, उत्तरकाशी, उत्तराखंड

यह लेख सटीक और सार्थक लगा। कुछ समय से मैं स्वयं इस बात को महसूस कर रही हूँ कि बच्चों के पाठ्यपुस्तकों तक सीमित होने की वजह से वे कहानी सृजन, नए-नए शब्दों से खेलने, कल्पनाशीलता आदि से दूर होते जा रहे हैं। प्रार्थना सभा में हिन्दी कविता-कहानी कहने की बारी आने पर भी या तो रटी-रटाई कविता या पूर्व से पढ़ी गई ऐसी कोई भी कहानी बोल देते

हैं। इसका कारण शायद यही है कि उनके हाथों ने अलग-अलग प्रकार की कहानियों के संग्रह को नहीं छुआ है, कहानियों में छिपे कई शब्दों को नहीं टटोला है। जब वे कहानी पढ़ते हैं तब वे स्वयं को उन किरदारों में नहीं ढाल पाते हैं। जब बच्चे नई-नई कहानियों में स्वयं को घोल लेते हैं, तब शायद वे ख़ुद को भी अभिव्यक्त करने का कौशल सीख पाते हैं। बहुत अच्छा बोलने के लिए बहुत अच्छा पढ़ना भी आवश्यक होता है। बच्चे तभी सृजनशीलता की तरफ़ क़दम बढ़ा पाएँगे जब वे विभिन्न किताबों के कई शब्दों और उनसे जुड़े रंगों से परिचित होंगे। एक अच्छी कहानी की किताब पढ़ने पर बच्चों के अन्दर कई भाव जन्म ले लेते हैं जो उन्हें नए-नए शब्दों को बरतना सिखाते हैं। आवश्यक है कि यह अवसर हम उन्हें दें। समय-समय पर हम उनके हाथों में ऐसी पुस्तकें उपलब्ध कराएँ जिनसे वे कल्पनाशीलता की तरफ़ बढ़ें, ख़ुद को भावनात्मक रूप से मज़बूत बना पाएँ, और स्वयं को अभिव्यक्त कर पाएँ। और इस सबमें सबसे बड़ी बात ये कि बच्चे हमारे साथ बहुत सहज महसूस करें। वे अपने अन्दर के विचारों को हमसे बाँट सकें।

कल्पना असवाल, सहा. अध्यापक, रा. आदर्श उच्च प्राथ. विद्यालय लाटा, भटवाड़ी, ज़िला उत्तरकाशी, उत्तराखंड



इस आलेख में लेखिका ने साहित्य एवं कल्पनाशीलता की बात की है। बच्चे कल्पनाशीलता के ज़रिए कविता व कहानी बनाने लगते हैं और इस तरह वे अपने अनुभव भी व्यक्त कर रहे होते हैं। लेखिका ने बताया कि ग्रामीण और वंचित तबक़ों के घरों के बच्चों के पास लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं होता है। स्कूल में और फिर दूर-दूर तक लाइब्रेरी भी नहीं होती, इसलिए उन्हें अच्छा साहित्य कम ही देखने-पढ़ने को मिलता है। वे कहती हैं कि साहित्य का पठन-पाठन न केवल विभिन्न मूल्यों पर संवेदनाओं को खोलता है, बल्कि बच्चों को इन मूल्यों को जीने और उनका एहसास करने का मौक़ा भी देता है। कहानियों की विभिन्न परिस्थितियों से जब बच्चे गुज़रते हैं तो उनमें कहीं-न-कहीं वे ख़ुद को भी रख पाते हैं। आलेख पढ़ने से मालूम हुआ कि बच्चे भी आसानी से चर्चा कर सकते हैं और अलग-अलग बातों को सबके सामने भी रख पाते हैं। इस तरह के कार्य, जिनमें किताबों की चर्चा ज़्यादा होती है, बच्चों में नई रोचकता, प्रेरणा, उत्सुकता और चिन्तन के नए आयाम खोलते हैं और उनमें बहुत सारे कौशलों का विकास होता है।

दीप्ति, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय पर्वतपुरी, ज़िला जयपुर, राजस्थान

परिप्रेक्ष्य, अंक 16

इस कॉलम में प्रकाशित सीमा देशमुख और गजेन्द्र राउत के लेख बहुत अच्छे और ज़मीनी स्तर से जुड़े हुए हैं। पढ़ते हुए समझ आता है कि कैसे अपशब्द या गालियाँ परिवार और आसपास के माहौल में जन्म लेती हैं और धीरे-धीरे पलती-बढ़ती रहती हैं। लेख में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयास यह है कि सम्बन्धित समूह ने इसे हिंसा के रूप में देखा, स्वीकार किया और इसे रोकने के लिए ख़ुद के स्तर पर संघर्ष किए। गालियाँ हमारे समाज में दूर-दूर तक व्याप्त हैं और बेहद हिंसक रूप में हैं। इन्हें एक मुद्दे के रूप पहचानकर लेख का रूप देने के लिए लेखिका को साधुवाद।

ऐसे ही 'बाल साहित्य में गुँथे मानवीय-सामाजिक मूल्य' लेख में बाल साहित्य की जिन किताबों का वर्णन किया गया है, वे सभी अपने-आप में बेहद अच्छी किताबें हैं। इनकी भाषा सरल है और इन किताबों को पढ़ते हुए समाज में व्याप्त विषमताएँ आसानी से दिखाई देने लगती हैं। लेख में वर्णित किताबों को मैंने पढ़ा है और युवा समूह के साथ इन्हें पढ़कर चर्चा भी की है। कहानी सुनने के बाद

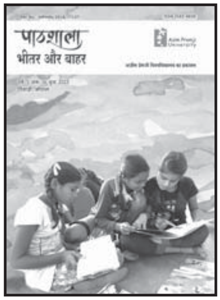
से ही उनके मन में क्या, क्यों, कैसे, ऐसा नहीं होना चाहिए; क्या ऐसा सच में होता है; जैसे सवाल उठने लगते हैं। इन सवालों पर चर्चा बच्चों और युवाओं को सामाजिक विषमता की समझ बनाने में मदद करती है और साथ ही 'हमें कैसा समाज बनाना है', इस दिशा में भी वे आगे बढ़ते हैं।

गजेन्द्र राउत ने अपने पुत्र के शुरुआती पठन-पाठन से कक्षा 5वीं तक के पठन-लेखन की यात्रा को सँभालकर रखा और उसे एक लेख के रूप में प्रस्तुत किया। यह बेहद प्रशंसनीय क़दम और अपने-आप में एक सम्पूर्ण दस्तावेज़ीकरण है। यह दिखाता है कि घर में बच्चों के लिए माहौल कैसे बनाया जाना चाहिए और इसका आगामी प्रतिफल कितना सुकून-भरा होता है, यह आनन्द उनका लेख पढ़ते हुए आता है।

"मैंने उसे व्यस्त रखने के लिए कोई चीज़ नहीं ख़रीदी, क्योंकि बातचीत जैसा मूल्यवान संसाधन मेरे पास पहले से ही मौजूद था", मैं इसे उनके लेख की सबसे अमूल्य पंक्ति के रूप में देखता हूँ।

महेश झरबड़े, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला खरगौन, मध्य प्रदेश

कैसे साथ–साथ चल पाए, पढ़ना–लिखना और सुनना–बोलना?, महेश झरबड़े, अंक 16



आलेख पढ़ने के बाद महसूस किया कि हमारी कक्षा का वातावरण भी बिलकुल ऐसा ही है। हम ब्लैकबोर्ड पर लिखते हैं तो बार-बार मना करने के बाद भी बच्चे उसे तुरन्त ही कॉपी में उतारने लगते हैं। मैं उन्हें समझाती हूँ कि मैं आप सबको उतारने के लिए अलग से समय दूँगी, पहले मेरी बातों या लिखी गई सामग्री को तो अच्छे-से समझ लो!

मैं बच्चों को समझकर लिखने का महत्त्व बताती हूँ और अपने शब्दों में दो-चार लाइनें और जोड़ने के लिए कहती हूँ। कुछ बच्चे यह आसानी से कर लेते हैं, पर कुछ के साथ दिक़्क़त होती है।

आलेख पढ़कर मैंने तय किया है कि अब मैं भी बच्चों की बातों को ब्लैकबोर्ड पर लिखकर उन्हें पढ़ना सिखाऊँगी, ताकि वे पढ़ना सीखने के साथ-साथ उसका आनन्द भी उठा सकें।

नंदिनी वर्मा, प्राथमिक शाला मंगल बाजार, गुडियारी, विकासखण्ड धरसिवाँ, रायपुर शहर, छत्तीसगढ़

शिक्षक के पेशेवर विकास में सहायक है कक्षागत प्रक्रियाओं का दस्तावेज़ीकरण, कमलेश चंद्र जोशी, अंक 16

मुझे लगता है कि यह आलेख शिक्षकों को अपनी कक्षा में नए-नए प्रयोग करके किसी विषय के प्रति बच्चों में रुचि जागृत करने में मददगार होगा।

आलेख इस बात पर प्रकाश डालता है कि पाठ्य सामग्री पर अच्छी शिक्षण योजना हम कैसे बना सकते हैं। मसलन, अगर हम सामाजिक विज्ञान में नागरिकता का पाठ 'कार्तिक और केकती का गाँव' पढ़ा रहे हैं तो हम इस गाँव के अन्तर्गत भाषा, विज्ञान, गणित आदि विषयों को लेकर पढ़ा सकते हैं और अलग-अलग गतिविधियाँ बच्चों को समझा सकते हैं, और विषय को रुचिपूर्ण बना सकते हैं। यदि हम किसी पाठ को ख़ुद पढ़कर शिक्षण योजना नहीं बनाएँगे और लिखित रूप से डायरी में गतिविधियों को नहीं लिखेंगे, सवाल नहीं बनाएँगे तो कैसे हम उस पाठ को रुचिकर बना सकते हैं! अगर हम इन सभी गतिविधियों का दस्तावेज़ीकरण करते हैं तो दूसरे शिक्षकों को भी यह प्रेरणा मिलती है कि कैसे उसे पाठ को रुचिपूर्ण तरीक़े से पढ़ा

सकें। यदि हम किसी गाँव के बारे में पढ़ा रहे हैं तो वहाँ की मिट्टी, जलवायु, फ़सल, समाज, गाँव का विकास, वहाँ की भाषा, परम्पराएँ, त्योहार, इत्यादि पर बहुत सारी गतिविधियाँ बच्चों के साथ कर सकते हैं।

सुनीता शर्मा, एमएस चंगोरभाटा पूर्व, ब्लॉक धरसींवा, रायपुर शहर, छत्तीसगढ़

मातृभाषा और पढ़ने–लिखने की भाषा में द्वन्द्व, मुकेश मालवीय, अंक 16



मातृभाषा के महत्त्व पर केन्द्रित यह लेख पाठकों को यह समझने में मदद करता है कि पढ़ने-लिखने की भाषा के लिखित रूप को समझने से पूर्व उसके मौखिक स्वरूप और साथ ही किसी भी भाषा को सीखने से पहले उसकी ज़रूरत या उपयोग को समझना बेहद ज़रूरी हो जाता है, अर्थात जिस तरह बच्चा अपनी बात को कहने के लिए अपनी मातृभाषा का प्रयोग करना सीखता है, उसे इस स्कूली भाषा के इस्तेमाल की ज़रूरत महसूस होना भी बेहद ज़रूरी है।

लेखक द्वारा अपनी कक्षा से प्रस्तुत एक उदाहरण उपरोक्त तथ्य का समर्थन भी करता है, कि किस तरह वह बच्चे की मातृभाषा (गोंडी भाषा) और स्कूल की भाषा से एक मिश्रित भाषा का निर्माण करते हुए पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया करते हैं। यह उदाहरण बच्चे में आत्मविश्वास जगाने का कार्य करता है जो उसके भाषा सीखने में मदद प्रदान करता है।

कुलदीप सिंह जाट, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बुदनी, ज़िला सीहोर, मध्य प्रदेश

बच्चे को जानना–समझना और सीखने का तरकीब, अभिषेक कुमार द्विवेदी, अंक 16

"सिर्फ़ प्रश्न का उत्तर बताने की बजाय 'उत्तर कैसे आया' यह बताना होगा, तभी वह मददगार होगा।" हम अकसर किसी भी बच्चे का मूल्यांकन उससे सवाल पूछकर करते हैं और स्कूल में उसके अनुशासित व्यवहार व कॉपी में भरे अक्षरों से उसकी दक्षता का अनुमान लगाते हैं। पर इस लेख में अवलोकन प्रक्रिया में जिस तरह के धैर्य और कुशलता का उदाहरण पढ़ने को मिला, उसी स्तर की शिक्षण प्रक्रिया की अपेक्षा सभी शिक्षकों से की जाती है। शिक्षण तभी सफल हो पाएगा जब जुड़ने वाले शिक्षक को समुदाय के बारे में जानकारी हो और कक्षा के विद्यार्थियों की स्थिति के बारे में चर्चा होती हो।

इस तरह के सभी सन्दर्भों से अवगत होने के बाद पढ़ाने के किस स्तर से इस प्रक्रिया को शुरू करना है, यह फ़ैसला लिया जा सकता है। इन सब मुख्य बिन्दुओं के बारे में लेख में बताने की कोशिश हुई है। हँसमुख जैसे जोशीले विद्यार्थियों को कक्षा शिक्षण से जोड़ पाना अपने-आप में एक संघर्ष है।

गणित में रुचि जगाना लगभग हर शिक्षक के लिए एक चुनौती होती है। जहाँ शिक्षक इसे प्रस्तुत करने में संघर्ष कर रहा होगा, वहीं सीखने वाला विद्यार्थी अपने जीवन में इसे पहली बार अनुभव कर रहा होगा। आने वाले समय में वह इस विषय से दूरी बना लेगा और सीखने का प्रयास करने में भी झिझक दिखाएगा। इसीलिए कह सकते हैं कि सीखने के शुरुआती समय में विषय का परिचय करवाना एक ज़िम्मेदारी का काम है। इसी ज़िम्मेदारी वाले भाव का उदाहरण आलेख में पढ़ने को मिला है।

चंदन, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बुदनी, ज़िला सीहोर, मध्य प्रदेश

यह लेख मुझे बहुत अच्छा लगा और इस लेख को पढ़कर मुझे तीन बातें समझ में आईं। पहली यह कि, इस लेख में हँसमुख नाम के बच्चे के बारे में शिक्षक ने पहले ख़ुद से जाना कि बच्चे का मन किसी काम में बहुत देर तक नहीं लगता है। वह किसी भी काम को बहुत कम समय दे पाता है और दूसरे काम की तरफ़ उसका ध्यान आकर्षित होने लगता है। चाहे वह गणितीय खेल हो या किसी कहानी पर चित्र बनाना, बच्चा अपना मन थोड़े समय तक ही लगा पाता है।

दूसरी बात, बच्चे के बारे में जानने के बाद उसके पीछे के कारणों को समझने के लिए शिक्षक ने बच्चे से अनौपचारिक बातचीत प्रारम्भ की और उसको अतिरिक्त समय दिया। शुरुआत में बच्चा अभिव्यक्ति नहीं करता है, लेकिन धीरे-धीरे वह शिक्षक से बातचीत करने में ख़ुद को सहज महसूस करने लगता है और अपने बारे में बताने लगता है। इस सबसे शिक्षक को यह समझ आता है कि पढ़ने-लिखने के अलावा कक्षा के दूसरे काम उसे अपेक्षाकृत आसान और रुचिकर लगते हैं, क्योंकि कक्षा के बाक़ी बच्चों और उसके बीच में लर्निंग गैप था।

तीसरी बात, बच्चे के बारे में जानने और समझने के बाद सिखाने की प्रक्रिया में बदलाव किया जाना एक अच्छे शिक्षक की अनिवार्य भूमिका है।

इस लेख में जिस तरह से शिक्षक ने अपनी शिक्षण प्रक्रिया में बच्चों के हिसाब से बदलाव किए, उससे बच्चों को सीखने में आसानी हुई। बच्चे की पारिवारिक पृष्ठभूमि को जानकर शिक्षक ने बच्चे को दिए जाने वाले गृहकार्य के प्रति समझ बनाई। बच्चे को शुरुआत में अतिरिक्त समय दिया और बाद में कक्षा के दूसरे बच्चों के साथ हँसमुख को शामिल किया। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान शिक्षक ने धैर्य बनाए रखा और समय-समय पर उसे प्रोत्साहन दिया। नतीजतन, वह बच्चे को कक्षा शिक्षण की प्रक्रिया में सक्रियता के साथ शामिल कर पाए और आज भी उनका काम जारी है। बच्चा अब आत्मविश्वास के साथ सीख रहा है।

लक्ष्मीकांत, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ब्लॉक खुरई, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश



यह लेख सीखने-सिखाने की उस परम्परा को तोड़ता है जिसके बारे में यह मान लिया जाता है कि अमुख बच्चा ऐसा ही है, यह सीख ही नहीं सकता। इस लेख में लेखक ने एक बच्चे हँसमुख के बारे में अनुभव का वर्णन किया है। हँसमुख के बारे में यह मान लिया गया है कि इसे कुछ नहीं आता, न यह कुछ सीख सकता है। लेखक ने इस समझ को तोड़ने के लिए निम्न क़दम उठाए और उसके साथ कार्य किया :

1. सबसे पहले उस बच्चे को समझने की कोशिश की, उसकी पसन्द-नापसन्द के बारे में जाना।

2. वह पढ़ने में क्या ग़लती करता है और वह पढ़ने-लिखने वाली प्रक्रिया में अधिकतम कितने समय तक रुक पाता है, इसे जाना। साथ ही उस बच्चे की मदद ली, जो हँसमुख की मदद करता था ताकि हँसमुख को समझने में आसानी हो और वह जल्दी समझ सके।

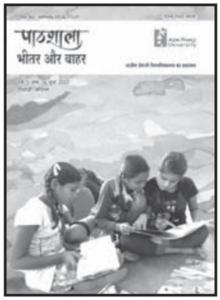
3. बच्चे की भाषा को समझा, और उसकी पारिवारिक स्थिति के बारे में जाना।

4. लेखक बच्चे के साथ गणित के शुरुआती समय में मूर्त वस्तुओं और फिर अमूर्त की ओर बढ़े। इस प्रकार उसके दैनिक जीवन के उदाहरण पर बच्चे से चर्चा की।

5. बच्चे के साथ इंटरवल के समय अलग से चर्चा करना, और वह ग़लत संख्या पढ़ रहा है तो उसे ऐसा करने के मौक़े देना (कोई उत्तर ग़लत क्यों है, यह कारण सहित उसे बताना और उसपर चर्चा करना) और बार-बार सवाल करने के अवसर उपलब्ध कराना ताकि वह ख़ुद ही अपनी ग़लती सुधार सके और सीख सके। धीरे-धीरे उसे सभी बच्चों के साथ शामिल करना। और अब वह अलग से नहीं, सभी बच्चों के साथ सीखता है।

मनीषा अहिरवार, रिसोर्स पर्सन, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, टीएलसी खुरई, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

सामाजिक विज्ञान शिक्षण का बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान से सम्बन्ध, सुनीता शर्मा, अंक 16



अकसर हम विषयों को अलग-अलग तराज़ू पर तौलते नज़र आते हैं। इससे अलग हम भाषा को एक विषय-सा गूढ़ और जटिल समझ उसे बोर्ड से काग़ज़ों पर उतारने और सुन्दर कलम से सुन्दर बनाने-सी प्रक्रियाओं में जकड़ देते हैं। यही हाल हम संख्या ज्ञान के साथ होते देखते हैं जहाँ आम जीवन की प्रक्रियाओं में मौजूद उसके अस्तित्व को न देखकर उसे पहाड़े की किताबों तक सीमित कर देते हैं। इसी द्वन्द्व की परिस्थिति में लेखिका भी उलझी दिखाई देती हैं, जहाँ कोविड के दौर ने बच्चों की स्थिति को शून्य-सा दर्शाया तो वापस उन बारीक़ियों की तरफ़ न जा पाने और सामाजिक विषय को पढ़ाने के असमंजस ने उन्हें विषयों की परस्पर निर्भरता को दिखाया जिसे वो बच्चों के बीच ले जाती नज़र आती हैं।

सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का मूल सम्बन्ध साक्षरता और संख्या ज्ञान से होता है। इन दोनों कौशलों का महत्त्व सामाजिक विज्ञान के शिक्षण में अत्यधिक होता है, क्योंकि ये कौशल शिक्षार्थियों को सामाजिक और संख्या की दुनिया को समझने और अध्ययन करने की क्षमता प्रदान करते हैं। साक्षरता के साथ छात्र राजनीति, समाज, संगठन जैसी विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं को समझ सकते हैं, और अन्य सामाजिक मुद्दों पर तर्क-वितर्क कर सकते हैं। हम इस लेख में देख सकते हैं कि बच्चे स्वयं 'इतिहास के स्रोत' जैसे पाठ पर स्वयं प्रश्न बनाते हैं और उनके उत्तर भी ढूँढ़ते हैं।

श्वेता चौबे, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बीना, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

इस लेख में, सामाजिक विज्ञान की कक्षा में भाषा कौशल विकास पर भी काम किया जा सकता है, यह अनुभव साझा किया है। शिक्षिका ने कक्षा में बच्चों की समस्याओं को समझा और उनके समाधान के लिए पूरे एक सप्ताह की कार्य योजना बनाई, जिसमें वह अपनी कक्षा में अलग-अलग स्तर के बच्चों के साथ उनकी आवश्यकता अनुसार काम कर रही हैं। साथ ही सामाजिक विज्ञान के विषयों को आधार बनाकर भाषा और सामाजिक विज्ञान विषय का भी शिक्षण कर रही हैं।

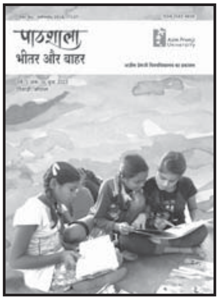
यह लेख पढ़कर मैं ज़्यादातर शिक्षकों की ओर से आने वाले प्रश्न, "एक ही कक्षा में अलग-अलग स्तर के बच्चों के साथ काम करना और साथ ही विषयों को भी पढ़ाना है, पाठ्यक्रम भी पूरा करना है", पर काम करने का एक नया तरीक़ा देख पाई। इससे यह समझने में भी मदद मिली कि शिक्षकों की कक्षा के अनुसार यह कैसे सम्भव हो सकता है। इससे शिक्षकों के साथ और ज़्यादा अच्छे-से कार्य योजना बनाने और कक्षा में काम करने में आसपास के सन्दर्भ से जोड़ते हुए कार्य करने की भी समझ मिली।

वीना, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बीना, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

कक्षा अनुभव पर आधारित यह लेख विषयों के अन्तर्सम्बन्ध को समझकर बरतने पर केन्द्रित है। पढ़ना सीखना और सीखने के लिए पढ़ना, शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया के केन्द्र में है। यदि छात्र समझकर पढ़ने-लिखने की दक्षता हासिल कर लेते हैं तो दूसरे विषयों को गहराई से समझने में आसानी हो जाती है। परिवेश का ज्ञान और अनुभव व दुनिया को देखने-समझने का नज़रिया जितना विस्तृत होता है, उतना ही आसान विषयों में शामिल नई जानकारी, नए सन्दर्भ से जुड़ना होता है। लेखिका सीखने की प्रक्रिया को आसान, मनोरंजक बनाने के लिए किए गए प्रयासों, पीयर लर्निंग की अवधारणा और गतिविधियों को उदाहरण के साथ प्रस्तुत करती हैं। छात्रों की आवश्यकता को बारीक़ी से समझकर उसका विश्लेषण करना और बच्चों के सीखने को रुचिपूर्ण बनाने की रणनीतियों को समझने में यह लेख सहायक है। कोविड काल में छात्र कक्षावार आगे बढ़ आए हैं, पर उनमें सीखे हुए और सीखने में हुए दोतरफ़ा ह्रास से आज भी शिक्षक और छात्रों का जूझना हो रहा है। आयु में बड़े छात्र ख़ुद को असहज महसूस करते हैं, पढ़ने-लिखने की दुनिया से कटे हुए वे हर विषय में संघर्ष करते हैं और संकोची स्वभाव के चलते स्वयं को अभिव्यक्त करने में चुनौती महसूस करते हैं। ऐसे में यह लेख मार्गदर्शन करता है।

अवनीश कुमार मिश्र, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखंड

पढ़ने की घण्टी ने बदली विद्यालय की छटा, श्याम सुंदर, अंक 16



इस लेख में बताया गया है कि बच्चों को अलग-अलग साहित्य से कैसे जोड़ सकते हैं। बच्चे केवल वही पढ़ते न रह जाएँ जो हम पढ़ाना चाहते हैं। वे एक स्वतंत्र पाठक बनें, इसके लिए पढ़ने की घण्टी जैसे प्रयास किए जाने चाहिए। एक शिक्षक होने के नाते इस प्रकार के प्रयास हमें अपने स्कूलों के छात्रों के साथ लगातार करते रहने चाहिए ताकि बच्चे जीवन में पढ़ने का दायरा बढ़ाकर नए साहित्य को पढ़ सकें, और उसका अपने जीवन में इस्तेमाल कर सकें। स्कूलों में पढ़ने की घण्टी ज़रूरी है जिससे बच्चे किताबों को छू सकें और उन्हें पलट सकें। जितना ज़्यादा पढ़ने का अभ्यास बच्चों के साथ होगा, उतना अच्छा वह पढ़ना-लिखना सीखेंगे।

ज्योति महोबिया, प्राथमिक शाला दल्ला टाडा बसाहारी, ब्लॉक खुरई, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

इस लेख में एक ऐसी समस्या के बारे में चर्चा है जिससे देश के प्रत्येक ग्रामीण परिवेश में पढ़ाने वाले लगभग सभी अध्यापक जूझते दिखाई देते हैं। वह समस्या है बच्चों के घर में पढ़ने-लिखने का परिवेश न होना, जिस कारण बच्चे इन कौशलों को अच्छे-से नहीं सीख पाते। लेखक के अनुसार, जिस वर्ग के बच्चे हमारे विद्यालय में आते हैं, माता-पिता उन्हें बाल साहित्य से परिचय करने में असमर्थ हैं, ऐसे में विद्यालयों की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वे बच्चों को बाल साहित्य से रूबरू होने के मौके उपलब्ध कराएँ।

लेखक ने अपनी कक्षा में किए गए प्रयासों के बारे में विस्तार से बताया है। उन्होंने अपनी कक्षा में बच्चों को बाल साहित्य से परिचित कराने एवं पढ़ने की नियमित आदत डालने के लिए भोजनावकाश के पश्चात 30-35 मिनट का कालांश 'पढ़ने की घंटी' निर्धारित किया। इस समय का उपयोग करते हुए उन्होंने जिस प्रकार बच्चों का किताबों से परिचय करवाया एवं उनके स्तर के अनुरूप उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करने हेतु जो प्रयास किए, वो सराहनीय हैं। ऐसा करते हुए उन्हें कई परेशानियों का सामना भी करना पड़ा। इनके कुछ उदाहरण भी उन्होंने इस लेख में दिए

हैं। मसलन, कुछ बच्चे अनेक प्रयासों के बाद भी नहीं पढ़ पा रहे थे और कई अभिभावक बच्चों को विद्यालय से सिर्फ़ इस कारण निकाल रहे थे कि उनके बच्चे वर्णमाला का क्रम तक नहीं जानते, हालाँकि वे किताब को पढ़कर उसका अर्थ समझ रहे थे। इन सभी परेशानियों के बाद भी उन्होंने अपने प्रयासों को जारी रखा और अन्ततः उन्हें बहुत अच्छे नतीजे भी मिले।

अभिषेक गर्ग, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन बीना, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश



श्याम सुंदर के लेख में उन बच्चों के प्रति चिन्ता दिखाई गई है, जिनका पढ़ने की जटिलता से रोज़ सामना होता है। विद्यालय के इन बच्चों के पास पाठ्यपुस्तक के अलावा विभिन्न चित्रों से सुसज्जित रंग-बिरंगी पुस्तकें देखने-पढ़ने का मौक़ा न के बराबर होता है।

लेख में ऐसे बच्चों के लिए सहजता से अलमारी में रखी पुस्तकों में से स्तर अनुसार पुस्तकें चयन कराना, फिर चरणबद्ध तरीक़े से पढ़ने की आदत की तरफ़ ले जाने के तरीक़े सुझाए गए हैं। इन तरीक़ों में, बच्चों को एक साथ गोल घेरे में बैठाना, फिर एक या दो पंक्तियों की किताबों का चयन करना, उन्हें बच्चों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना, आदि शामिल हैं। लेखक की मेहनत व दो वर्ष के सब्र के साथ, शुरुआत से ही बच्चों के स्तर को 'दीवार पत्रिका' के स्तर तक ले जाना, पढ़ने की घण्टी के महत्त्व को दर्शाता है।

मोहन चन्द्र पाठक, लाइब्रेरी रिसोर्स पर्सन, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला देहरादून, उत्तराखंड

कविता शिक्षण और भाषाई कौशल, प्रतिभा शर्मा, अंक 16

इस लेख की शुरुआत ही इस महत्त्वपूर्ण सवाल से होती है कि बच्चे शिक्षण प्रक्रिया का हिस्सा न बनें तो सीखना कैसे हो?

इसका जवाब खोजते हुए लेखिका कविता को अपनी कक्षा में जगह देती हैं, हावभाव के साथ कविता कराती हैं और बच्चे रोचकता व आनन्द के साथ कविता गाते हुए झूमते हैं। कविता के ज़रिए भाषा शिक्षण पर जब लेखिका द्वारा काम किया गया तो उन्होंने बच्चों के आनन्द के साथ ही सीखने के प्रतिफलों का बख़ूबी ध्यान रखा। मसलन, कविता को लयबद्ध ढंग से पढ़ना, सौन्दर्यबोध और रचनात्मकता प्रेरित करना, समझ के साथ चर्चा करना, शब्दकोश का विस्तार करना, सवाल आना और उत्तर पाने की प्रक्रिया से जूझना, सोचने-समझने और चिन्तन करने का आधार विकसित करना, आदि।

मैंने सीखा कि किसी भी अवधारणा पर काम करने से पहले स्वयं की तैयारी होना बहुत ज़रूरी है।

अजय सैनी, रिसोर्स पर्सन, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, टीएलसी खुरई, ज़िला सागर, मध्यप्रदेश

साक्षात्कार, डॉ सुमन बिष्ट, अंक 16

साक्षात्कार में सुमन की शैक्षिक यात्रा से यह समझ बनती है कि बच्चों के साथ किस तरह से और लगातार कार्य करते रहना चाहिए। साथ ही, उनके साथ कार्य करने के लिए अनवरत रूप से जुड़े रहना और विभिन्न गतिविधियाँ करवाते रहना भी आवश्यक है। इसके अलावा, शिक्षक के सकारात्मक रवैए से बच्चों में जोश का निर्माण होता है और उनमें ऊर्जा पैदा होती

है। *पाठशाला* पत्रिका का बहुत-बहुत धन्यवाद कि उन्होंने इस तरह के साक्षात्कार को हमारे सामने प्रस्तुत किया।

सीमा अरोड़ा, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, तिजारा, ज़िला अलवर, राजस्थान

समतामूलक और समावेशी शिक्षा की संस्कृति, संवाद, अंक 16

संवाद पढ़ने से मुझे संविधान के अमूर्त स्वरूप को अपने आसपास देख पाने में मदद मिली। स्कूल, कक्षा में इन मूल्यों को बच्चों के अन्दर पनपाने के कुछ आसान तरीक़े समझ आए। हालाँकि, स्कूल में मूल्यों की बात होती है, लेकिन वह उच्च कक्षाओं की किताबों तक ही सीमित रह जाती है। मेरे विचार से संवैधानिक मूल्यों को हर व्यक्ति के एक दूसरे के साथ व्यवहार और सामाजिक तौर-तरीक़ों से जोड़कर समझा जा सकता है, भले ही वह व्यक्ति किसी भी उम्र, जाति, या वर्ग का हो। व्यवहार में संवैधानिक मूल्यों के महत्त्व की समझ सिखाने से नहीं, बल्कि महसूस करने और उन्हें स्वीकार करने की इच्छा से आती है। कक्षा में सबको अपनी बात कहने का अवसर देना, एक दूसरे की बात सुनना जैसे व्यवहार बच्चों के आसपास अगर बार-बार होते रहेंगे और हम उनसे इनपर बात भी करेंगे, तो मेरा विश्वास है कि छोटी कक्षा के बच्चे ख़ुद भी इन मूल्यों के महत्त्व को समझ पाएँगे और दूसरों को भी इनके बारे में बता पाएँगे। संवैधानिक मूल्यों पर बातचीत इसीलिए भी ज़रूरी लगती है क्योंकि यह समाज की उचित-अनुचित बातों को सामने लाकर इनपर सोचने-विचारने का मौक़ा भी देती है।

ज्योति, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बीना, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

स्पष्टीकरण : पाठशाला भीतर और बाहर के अंक 16 में मुकेश मालवीय का लेख **'मातृभाषा और पढ़ने-लिखने की भाषा का द्वन्द्व'** छपा था। इस लेख के अन्तिम दो पृष्ठों (47, 48) के कुछ हिस्से दिगंतर, जयपुर की किताब **शिक्षक की पुस्तक : भाषा** से उद्धृत किए गए हैं। इस किताब के लेखक रोहित धनकर हैं। -सं.

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर **पाठशाला भीतर और बाहर** में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह, यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी अपने काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तर्क्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि। इसी तरह, कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे, यह बता सकते हैं। गणित का एक उदाहरण शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उन्हें सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह, बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही, ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों एवं उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने

में मदद मिले और उनकी भाषा व विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा, आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उनमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि **पाठशाला भीतर और बाहर** का यह सत्रहवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26-बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1, भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ

